जन-मार्च 2012
ISSN:2320-7736

सत्यमेव जयते

विज्ञान गरिमा सिंधु

अंकः 80

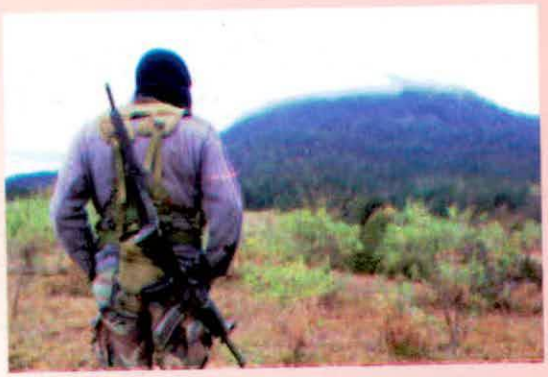

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development (Department of Higher Education)
Government of India

विज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक पत्रिका)

अंक 80

जनवरी-मार्च, 2012

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

मानव संसाधन विकास मंत्रालय

(उच्चतर शिक्षा विभाग)

भारत सरकार

765 HRD/2013—1A

'विज्ञान गरिमा सिंधु' एक विज्ञान त्रैमासिक पत्रिका है। पत्रिका का उद्देश्य है– हिंदी माध्यम से विश्वविद्यालयी व अन्य छात्रों के लिए विज्ञान संबंधी उपयोगी एवं अद्यतन पाठ्य पुस्तकीय तथा संपूरक सहित्य की प्रस्तुति। इसमें वैज्ञानिक लेख, शोध-लेख, तकनीकी निबंध, शब्द-संग्रह, शब्दावली-चर्चा, विज्ञान-कथाएं, विज्ञान-समाचार, पुस्तक-समीक्षा आदि का समावेश होता है।

लेखकों के लिए निर्देश

1. लेख की सामग्री मौलिक, अप्रकाशित तथा प्रामाणिक होनी चाहिए।
2. लेख का विषय मूलभूत विज्ञान, अनुप्रयुक्त विज्ञान और प्रौद्योगिकी से संबंधित होना चाहिए।
3. लेख सरल हो जिसे विद्यालय/महाविद्यालय के छात्र आसानी से समझ सकें।
4. लेख लगभग 2000 शब्दों का हो। कृपया टाइप किया हुआ या कागज के एक ओर स्पष्ट हस्तलिखित लेख भेजें जिसके दोनों तरफ हाशिया भी छोड़ें।
5. प्रकाशन हेतु भेजे गए लेख के साथ उसका सार भी हिंदी में अवश्य भेजें। लेख में आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का ही प्रयोग करें तथा प्रयुक्त तकनीकी/वैज्ञानिक हिंदी शब्द का मूल अंग्रेजी पर्याय भी आवश्यकतानुसार कोष्ठक में दें।
6. श्वेत-श्याम या रंगीन फोटोग्राफ स्वीकार्य हैं। रेखाचित्र सफेद कागज पर काली स्याही से बने होने चाहिए।
7. लेख के प्रकाशन के संबंध में संपादक का निर्णय ही अंतिम होगा।
8. लेखों की स्वीकृति के संबंध में पत्र व्यवहार का कोई प्रावधान नहीं है। अस्वीकृत लेख वापस नहीं भेजे जाएंगे। अतः लेखक कृपया टिकट-लगा लिफाफा साथ न भेजें।
9. प्रकाशित लेखों के लिए मानदेय की दर 250/– रुपए प्रति हजार शब्द है, तथा न्यूनतम राशि 150 रुपए और अधिकतम राशि 1000 रुपए है। भुगतान लेख के प्रकाशन के बाद ही किया जाएगा।
10. कृपया लेख की दो प्रतियां निम्न पते पर भेजें:

    श्री अशोक एन. सेलवटकर
    संपादक, विज्ञान गरिमा सिंधु
    वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
    पश्चिमी खंड – 7, रामकृष्णपुरम्,
    नई दिल्ली – 110066
11. अपने लेख E-mail द्वारा तथा CD में भी (फोंट के साथ) भेज सकते है।
12. समीक्षा हेतु कृपया पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां भेजें।

सदस्यता शुल्क :

	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा	
सामान्य ग्राहकों/संस्थाओं के लिए प्रति अंक	रु. 14.00	पौंड 1.64	डॉलर 4.84
वार्षिक चंदा	रु. 50.00	पौंड 5.83	डॉलर 18.00
विद्यार्थियों के लिए प्रति अंक	रु. 8.00	पौंड 0.93	डॉलर 10.80
वार्षिक चंदा	रु. 30.00	पौंड 3.50	डॉलर 2.88

वेबसाइट : www.cstt.nic.in

कापीराइट ©2010

प्रकाशक :
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
भारत सरकार, पश्चिमी खंड–7
रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली –110066

बिक्री हेतु पत्र–व्यवहार का पता :
वैज्ञानिक अधिकारी, बिक्री एकक
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली
आयोग, पश्चिमी खंड–7,
रामकृष्णपुरम्, सेक्टर–1,
नई दिल्ली– 110 066
दूरभाष – (011) 26105211
फैक्स – (011) 26102882

बिक्री स्थान :
प्रकाशन नियंत्रक, प्रकाशन विभाग
भारत सरकार,
सिविल लाइन्स, दिल्ली – 110054
E-mail : vgs.cstt@gmail.com

अध्यक्ष की कलम से....

आयोग की त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका का अंक 80 प्रस्तुत करते हुए हर्ष हो रहा है जिसमें उच्चस्तरीय वैज्ञानिक लेखों का अनवरत प्रकाशन विज्ञान गरिमा सिधुं में किया जाता है। आज हमारे देश में जहां एक ओर विज्ञान के साथ-साथ अन्य शिक्षा भी अंग्रजी माध्यम में पढने पढ़ाने की एक स्पर्धा लगी है वहीं आयोग हिंन्दी व अन्य भारतीय भाषाओं के माध्यम से विविध विषयों के अध्ययन को सुगम बनाने के लिए प्रतिवद्ध है। आयोग की शब्दावली का प्रयोग करते हुए वैज्ञानिक विषयों पर लेखों का विज्ञान गरिमा सिंधु के माध्यम से प्रकाशन एक महत्वपूर्ण कदम है।

पत्रिका का प्रस्तुत 80 वां अंक पर्यावरण तथा आयुर्विज्ञान के नए विकासों से अनुप्रमाणित है। जैविक कृषि की नई संभावनाओं की तलाश डॉ. इंदुभूषण पांडेय तथा दीनानाथ शुक्ला ने अपने आलेख में वर्णित की है। डॉ. दिनेश मणि ने औषधियों के अक्षुण्ण स्रोत के रूप में समुद्र को खँगाला है, तो डॉ. बिजय कुमार उपाध्याय ने सिमटते हुए हिमदों के परिणामस्वरूप संभावित भावी जल-संकट पर ध्यान आकर्षित किया है। एक ओर फलो के उत्पादन को बढाने के लिए हॉर्मोनों की उपयोगिता का पक्षपोषण डॉ. आर.एस. सेंगर और उनके सहयोगी विद्वान वैज्ञानिक कर रहे है तो दूसरी ओर डॉ. नवीन कुमार बोहारा गेहूं के प्रति प्रत्यूर्जता (एलर्जी) से उत्पन्न होने वाले सीलिएक रोग की व्याख्या प्रस्तुत कर रहे है।

आयुर्विज्ञान विषय पर डॉ. जे एल अग्रवाल का यकृतशोथ संबंधी लेख रसायन विज्ञानी की सतीश चंद्र सक्सेना का आहार में कैल्सियम की उपयोगिता लेख डॉ. मौर्य का जान लेवा विषाणुओं से संबंधित लेख के विजय कुमार प्रधान संपादक पठनीय एवं ज्ञानवर्धक है। आयोग के आयुर्विज्ञान के प्रभारी डॉ. भीमसेन बेहरा ने भारतीय आयुर्विज्ञान (आयुर्वेद) के अनुसार 'आहार-सिद्धांत' का रोचक विवरण प्रस्तुत किया है। इस अंक के जरिए हम सुविज्ञ पाठकों को आयोग द्वारा हाल ही में प्रकाशित कुछ शब्दसंग्रहों की जानकारी भी उपलब्ध करा रहे हैं। इनके आयुर्विज्ञान से संबंधित तीन शब्द संग्रह तथा जैव प्रौद्योगिकी एवं कृषिविज्ञान से संबंधि त एक मूलभूत शब्दावली सम्मिलित है।

इस पत्रिका के सुचारु संपादन संचालन के लिए मैं श्री अशोक सेलवटकर, वैज्ञानिक अधिकारी का भी साधुवाद देता हूँ क्योंकि वे अपने शब्दावली-परिभाषा कोशों और अपने विषय की पाठमालाओं के साथ इस पत्रिका के सम्पादन का दायित्व भी सहर्ष निभा रहे हैं। पाठकों से अनुरोध है कि इस पत्रिका के लिए अपने बहुमूल्य लेख भेजते रहें तथा औरों को भी इसके लिए प्रेरित करते रहें। पत्रिका के विषय में तथा उसमें प्रकाशित सामग्री के संबंध में आपकी सम्मति/सुझाव की अपेक्षा रहेगी।

(प्रो.केशरी लाल वर्मा)
अध्यक्ष
वैज्ञानिक तथा तकनीकी
शब्दावली आयोग

नई दिल्ली

विज्ञान गरिमा सिंधु

हिंदी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेखन की स्तरीय त्रैमासिकी

अंक-80, जनवरी–मार्च, 2012

प्रधान संपादक
प्रो. केशरी लाल वर्मा
अध्यक्ष

संपादक
अशोक सेलवटकर
वैज्ञानिक अधिकारी

सहयोग
श्री देवेंद्र दत्त
नौटियाल

प्रकाशन-मुद्रण व्यवस्था
डॉ. धर्मेन्द्र कुमार, स.नि.
श्री आलोक वाही
कलाकार

श्री कर्मचंद शर्मा
प्र.श्रे.लि.

बिक्री एवं वितरण
डॉ बी.के. सिंह
वैज्ञानिक अधिकारी

संपर्क सूत्र
'संपादक'
विज्ञान गरिमा सिंधु
वैज्ञानिक तथा तकनीकी
शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड–7
आर. के. पुरम, नई
दिल्ली–110066

अनुक्रम

			पृ. सं.
1.	समुद्र औषधियों का अक्षुण्ण स्त्रेत	डॉ. दिनेश मणि	1
2.	आहार में कैल्सियम की उपयोगिता	श्री सतीश चंद्र सक्सेना	8
3.	जैविक खेती के प्रमुख आयाम: संभावनाएं एवं समस्याएं	डॉ. इंदुभूषण पांडेय एवं डॉ. दीनानाथ शुक्ल	12
4.	सिमटते हिमनद, बढ़ता जल संकट	डॉ. विजय कुमार उपाध्याय	16
5.	गेहूँ से प्रत्यूर्जता (एलर्जी): सीलिएक रोग	डॉ. नवीन कुमार बौहरा	19
6.	फलोत्पादन बढाने में हॉर्मोनों की उपयोगिता	डॉ.आर.एस. सेंगर, विवेकानंद प्रताप एवं रेणू चौधरी	21
7.	गुणाकर मुले: हिंदी विज्ञान लेखन के पुरोधा	जगनारयण	30
8.	जानलेवा विषाणुओं की खोज और उनसे मुक्ति के प्रयास	डॉ. दिलीप कुमार मौर्य	35
9.	मकोय: एक उपयोगी वनस्पति	सुश्री मधु ज्योत्सना	38
10.	यकृतशोथ : एक घातक रोग	डॉ.जे.एल. अग्रवाल	40
11.	स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य-सेवा: एक परिदृश्य	संजय चौधरी	42
12.	आहार सिद्धांत	डॉ. भीमसेन बेहेरा	50
13.	विज्ञान-समाचार	डॉ. दीपक कोहली	57
	लेखक–परिचय		63
	आयोग के प्रकाशन		64–69
	ग्राहक फार्म व बिक्री संबंधी नियम		70–72

इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों, अभिव्यक्त विचारों आदि से वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय या संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। यह पत्रिका वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, द्वारा निर्मित शब्दावली के प्रचार–प्रसार के साथ हिंदी में वैज्ञानिक लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए प्रकाशित की जाती है।

1

समुद्रः औषधियों का अक्षुण्ण स्रोत

डॉ.दिनेश मणि, डी.एस-सी.

पौराणिक कथाओं में समुद्र-मंथन के बारे में भी लिखा मिलता है जिससे इस बात की पुष्टि हो जाती है कि सागरीय संपदा से औषधि प्राप्त करना नई बात नहीं है। उदाहरण के रूप में समुद्र के पानी की ही विशेषता में यहाँ तक वर्णित है कि इसका प्रयोग कुष्ठ रोग, पाचन-नली के घाव आदि में करते थे।

पृथ्वी के संपूर्ण धरातल का 71% भाग समुद्रों से घिरा हुआ है। इस समुद्री वातावरण में लगभग 5,00,000 प्रकार के जीव पाए जाते हैं, जिनको 30 संघों में वर्गीकृत किया जा सकता है। भारतीय समुद्र तट लगभग 6,000 किमी. लंबा है और उसमें समुद्र-तट से तलहटी तक अनेक प्रकार के जीव बहुतायत में पाये जाते हैं।

प्राचीन औषधि विज्ञान की विभिन्न शाखाओं, जैसे कि आयुर्वेदिक, यूनानी, सिद्ध पद्धतियों आदि में कई प्रकार के रोगों का निवारण, सागरीय संपदाओं विशेषकर जैसे मुक्ता, शुक्ति, घोंघा, कौड़ी, शंख, प्रवाल, अम्बर एवं नमक आदि के उपयोग का उल्लेख मिलता हैं।

प्राय: यह माना जाता है कि औषधीय प्रयोजनों के लिए पादपों और पशुओं के सारतत्वों का प्रयोग करना उतना ही पुराना है जितना कि मानव का इतिहास। भूमि पर पाए जाने वाले कुल पौधे और पशु इनकी समग्र संख्या का केवल 20% ही हैं। महासागर संपूर्ण धरातल के 71 प्रतिशत भाग में पैदा हुआ है। इनमें विविध प्रकार के पौधे और पशु प्रचुर मात्रा में हैं। नितांत असमान पर्यावरणीय दशाओं के अंतर्गत समुद्र में वनस्पतिजात और प्राणिजात की 30 से भी अधिक वर्गों में विभाजित की गई अनुमानत: 5,00,000 या इससे भी अधिक प्रजातियां हैं जो भूमि पर पाई जाने वाली प्रजातियों से काफी भिन्न हैं। कई ऐसे समुद्री जीवों की पहचान कर ली गई है, जिनमें आविषी पदार्थ पाए जाते हैं। परंतु इनमें से 1 प्रतिशत से भी कम की जांच जैव-सक्रियता के लिए की गई है।

समुद्री जीवों का रासायन, उनके स्थलीय प्रतिरूपों से कई बातों में भिन्न है। यह सोचकर आश्चर्य होता है कि वे जीव भिन्न-भिन्न पर्यावरणीय दशाओं में कैसे अपने आपको ढाल लेते हैं। चूंकि विकास-मूलक क्रम में बहुत से समुद्री जीव, स्थलीय जीवों की अपेक्षा बहुत नीचे होते हैं, इसलिए उनमें कई गौण उपापचयज प्रचुर मात्रा में पाए जाने की आशा होती है। भूमि पर पाए जाने वाले पौधों और पशुओं में हैलोजनी मिश्रण कम ही पाए जाते हैं। जबकि समुद्र जल में विद्यमान क्लोरीन और ब्रोमीन का उच्च सांद्रण होने के कारण समुद्री जीवों में ये हैलोजनी मिश्रण बहुत अधिक मात्रा में विद्यमान होता है। इन मिश्रणों में प्रतिसूक्ष्मजीवी सक्रियता होती है। इसी प्रकार समुद्री-जीवों में स्टेरॉल प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं।

एन्टीफर्टिलिटी कर्मकों और कॉर्टिकायड्स सेक्स हार्मोन सहित विभिन्न दवाओं को बनाने के लिए स्टेरायडों का इस्तेमाल करने में काफी वृद्धि हुई है। ऐसी क्रियाकलापों से स्टेरॉयड निर्माण में प्रयोग में आने वाली सामग्री की अत्यंत कमी हो गई है। समुद्री साधनों से प्राप्त स्टेरायडोस को स्टेरायड का उत्पादन करने वाले पदार्थों के रूप में

765 HRD/2013—2A

इस्तेमाल किया जा सकता है। मानव शरीर में पैदा होने वाले पोस्टग्लैंडिस अत्यंत सूक्ष्म होते हैं और मानव जीवन की प्रक्रियाओं में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये गार्गोनियन्स और साफ्ट कोरल में बहुत अधिकता में होते हैं। अंतत: कई आविष जैसे टेट्रोडोटॉक्सिन और सेक्सीटानिक्स बड़े शक्तिशाली होते हैं, जिनका उत्पादन बड़ी असामान्य संरचनाओं वाले समुद्री जीवों द्वारा किया जाता है।

समुद्री जीवों से औषधियां तैयार करने की बड़ी संभावना होने के बावजूद भी आज कुछ ही पुस्तकों में समुद्रीजीवों से उत्पन्न 10,000 जैव-सक्रिय पदार्थों के बारे में जानकारी दी गई है, जिनमें समुद्र से उत्पन्न केवल 0. 5 प्रतिशत ही हैं। ऐगार, एल्जिमेट, कैरागीनन, कॉड-यकृत तेल, सोडियम मोरहुलेट, प्रोटामीन सल्फेट, इक्थामोल आदि पदार्थ काफी पहले से ही समुद्र से प्राप्त किए जा रहे हैं।

प्रतिजीवी (एण्टीबायोटिक) में एक नए उत्पाद, सपैज़ोस्पोरिन, जिसे पहले समुद्री जीवों से अलग किया गया था, ने हर्दय प्रतिरोपण तथा शरीर के अन्य अंगों के प्रतिस्थापन संबंधी उन शल्य-क्रियाओं को बहुत ही आसान बना दिया है-जिनकी शल्य-क्रिया करना बहुत मुश्किल काम माना जाता था। इसी प्रकार, कई मिश्रणों से अर्बुद (ट्यूमर) रोधी औषधियों का विकास करने के लिये बड़े आशाजनक परिणाम प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त, कैन्सर, एड्स, हर्पीज तथा अन्य कई बीमारियों के इलाज से संबंधित औषधियां भी समुद्र में उपलब्ध हैं।

वर्ष 1978 तक, हिंद महासागर के जीव जगत से भेषजीय संभावनाओं के बारे में बहुत कम जानकारी थी, जब राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान, गोवा और केंद्रीय औषध अनुसंधान संस्थान, लखनऊ द्वारा संयुक्त रूप से एक परियोजना आरंभ की गई। उसके बाद अमरीकी भारत निधि (यू.एस.आई.एफ.) का इस्तेमाल करके अमरीका के सहयोग से इस परियोजना का विस्तार किया गया। इस परियोजना का नया शीर्षक था-हिंद महासागर से जैव-सक्रिय पदार्थ तथा इसमें राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान, गोवा, केंद्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान, लखनऊ और बोस संस्थान, कोलकाता भारत की तीन प्रतिभागी संस्थाओं के रूप में तथा स्टिवेश इंन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलाजी, होबोकेन, न्यू जर्सी, दि यूनिवर्सिटी ऑफ सदर्न कैलिफोर्निया, लॉस एंजेल्स और दि ओसबोर्न लेबोरेट्रीज, न्यूयार्क अमरीकी सहयोगियों के रूप में सम्मिलित हुए। यह परियोजना वर्ष 1985 में आरंभ की गई।

कुछ सागरीय संपदाओं के औषधीय गुण इस प्रकार हैं-

मुक्ता एवं शुक्ति

आयुर्वेद में मुक्ता से कई प्रकार की औषधियों जैसे मोती, भस्म, मोती भस्म नं. 1, मोती भस्म (चन्द्रपूरित) मोती पिंटी, मोती पिष्टी सर्वोत्तम नं.1 आदि तथा मुक्ता एवं शुक्ति के मिश्रण से मुक्ता शुक्ति पिष्टी आदि दवाइयां आज भी बाजार में उपलब्ध हैं जिन्हें अनेक प्रकार के रोगों के उपचार में इस्तेमाल करते हैं। इसी प्रकार सिद्ध चिकित्सकों द्वारा मुक्ता का प्रयोग मृत्थू बरपाम तथा शुक्ति का प्रयोग मृत्थू पिप्पी बरपाम तथा शुक्ति का प्रयोग मुत्थू चिप्पी बरपाम औषधि बनाने में होता है। इस प्रकार बने बरपाम को सभी प्रकार की बवासीर, खांसी तथा क्षय रोग आदि के उपचार में उपयोग करते हैं।

शुक्ति के कड़े छिलके से एक प्रकार का महलम बनाया जाता है, जिसे पैरों में पड़ी दरारों के उपचार के लिये प्रयोग करते हैं इसी से तैयार की गई भस्म अतिसार व आतों के चिरकारी रोग में प्रयोग होती है।

घोंघा-कौड़ी-शंख

हिंदुओं की पूजा में ध्वनि अवतरण में प्रयोग होने वाला शंख जैन्क्स पाईदम भारत के सभी समुद्र तटीय क्षेत्रों में पाया जाता है। इस समूह के जंतुओं को उनके कड़े छिलकों के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। सिद्ध पद्धति के अनुसार इनसे बरपाम बनाया जाता है, जिसे

765 HRD/2013—2B

बवासीर, आमाशय के रोग, गले की घुंडी आदि बीमारियों में प्रयोग होता है। शुद्धिकरण के पश्चात् बरपाम का बुखार एवं आंख की बीमारियों में भी प्रयोग होता है।

प्रवाल

प्रवालों को उनके रंग, बाह्य संरचना आदि के आधार पर विभिन्न समुदायों में बांटा जाता है। इनमें हैलीपोरा एवं मिली पोरा नामक प्रवाल मुख्य हैं। सिद्ध पद्धति में मिलीपोरा का अधिक प्रयोग होता है। इसके द्वारा बनाया गया बरपाम मधुमेह, चर्मरोग, मूत्राशय में सिकुड़न इत्यादि रोगों के उपचार में प्रयोग होता है।

अम्बर

यह नर व्हेल की आंतों से उत्सर्जित कठोर पदार्थ है जिसे अम्बरग्रीस कहते हैं। इसको शक्तिहीन फेफड़े की बीमारियों, लकवा, जोड़ों के दर्द, बुखार, शुक्राणु को बढ़ाने आदि में प्रयोग करते हैं। वेल्थ ऑफ इंडिया, 1976 में इसको याद्दाश्त बढ़ाने एवं कामवासनावर्धक के रूप में भी वर्णित किया गया है।

अम्बर को सुपारी, लौंग, अदरक के रस में संयोजित करके वधा, कुभा एवं कुष्मम आदि रोगों के उपचार में प्रयोग करते हैं।

भारतीय आयुर्वेदिक पद्धति में (भावप्रकाश सोलहवीं शताब्दी) में भी लेमिनेरिया एवं पोरपाहरा शैवाल जातियों का वर्णन अनेक बीमारियों के इलाज कें संदर्भ में मिलता हैं।

भारत में राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान, गोवा, केंद्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान, लखनऊ और बोस संस्थान, कोलकाता के सहयोगात्मक प्रयासों से केवल पिछले पाँच-सात वर्षों में समुद्री वनस्पतिजात और प्राणिजात के अन्वेषण के लिए गंभीरतापूर्वक प्रयास किया गया। उनके संयुक्त प्रयासों के परिणामस्वरूप लगभग 500 समुद्री नमूनों की जीव वैज्ञानिक छान-बीन के साथ-साथ उनकी पहचान कर ली गई है और कुछ मामलों में उनके सक्रिय अवयव की पहचान भी कर प्रतिउर्वरता ली गई है। कुछ नमूनों में दूसरों से अलग प्रतिविषाणु, प्रतिउवेरता, अल्प सुग्राहिता और सी.एन.एस. उद्दीपन जैसी आशाजनक जैववैज्ञानिक सक्रियता पाई गई है। कुछ अपरिष्कृत उत्पादों में उच्च आविषता पाई गई है। इनमें से कुछ नमूनों पर भारत सरकार के महासागर विकास विभाग द्वारा वित्त-पोषित एक नए कार्यक्रम ''समुद्र से औषधियां और जैव सक्रिय पदार्थ'' के अंतर्गत अनुवर्ती कार्यवाई की जा रही है। इस कार्यक्रम में ग्यारह प्रयोगशालाओं की भागीदारी है। एकत्र किए गए लगभग 34 प्रतिशत नमूनों में कुछ जैवसक्रियता देखी गई है, जो भूमि पर पाए जाने वाले पादपों की तुलना में काफी अधिक है।

समुद्री वनस्पतिजात और प्राणिजात के कई पहलुओं का अध्ययन किया गया है। आदिजंतु प्रोटोजोआ, स्पंजों, सीलेन्टरेट् एकिनोहर्मस मोलस्क, निमराटाइन्स, सी स्नेबस और मछलियों से कई (आविषी) उपापचयज अलग किए गए हैं। इनमें से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है पैलीटॉक्सिन आदि। इनमें से कुछ आविषों (टॉक्सिनों) की सक्रियता की क्रियाविधि का अध्ययन किया गया है। प्रतिजीवाणुक, प्रतिविषाणुक, प्रतिनवद्रव्वीय और अन्य भेषज गुण विज्ञान संबंधी गुणधर्मों जैसी कई अन्य सक्रियताओं के बारे में भी सूचना मिली है तथापि ऐसी रिपोर्टों की संख्या कम है जिनमें नई रासायनिक संरचना के पृथकन के साथ-साथ उसकी जैव-रासायनिक सक्रियता का वर्णन होता है।

अनुसंधानकर्ताओं ने समुद्रों में से नई औषधियों को प्राप्त करने के प्रयास जारी रखे हैं क्योंकि समुद्र एकमात्र ऐसा स्थान है जहां चिकित्सा विज्ञान की असीम संभावनाएं छिपी हुई हैं और बीते समय में विभिन्न बीमारियों के उपचार को ध्यान में रखकर समुद्रों पर अधिक अध्ययन भी नहीं किया गया है।

इस दिशा में प्रथम प्रयास किया है कैलिफोर्निया में ला जोल्ला स्थित स्क्रिप्स इंस्टीट्यूशन ऑफ ओशनोग्राफी के वरिष्ठ जैव-वैज्ञानिक विलियम फेनिकल ने, जिनकी प्रयोगशाला में प्रतिदिन समुद्र से नमूने लाए जा रहे हैं और उन्हें नए-नए सूक्ष्मजीव प्राप्त करने के लिए पेट्रीडिशों में संवर्धित किया जा रहा है ताकि इन सूक्ष्मजीवों की सहायता से प्रतिजैविकों के आगे की ऐसी कोई चीज मिले जिससे विभिन्न भयावह बीमारियों का उपचार आसानी से हो सके। इसके अलावा भी अन्य कई प्रकार के परीक्षण इन नमूनों पर किए जा रहे हैं। विलियम फेनिकल और उनके सहयोगी इस दिशा में 1980 से ही प्रयासरत हैं और उन्हें कुछ सफलता भी हाथ लगी है। उन्होंने समुद्र में पाए जाने वाले एक अद्भुत जीव स्यूडोटेरोजार्जिया एलिसाबेथी नामक समुद्री पिच्छ (सी फेदर) से रसायन प्राप्त किया है जो चिकित्सा वैज्ञानिकों की भरपूर मदद कर सकता है। इस रसायन का नाम है स्यूडोटेरोसिन। मानवों में स्यूडोटेरोसिन पर किए गए आरंभिक परीक्षणों से ऐसा ज्ञात हुआ है कि सूर्यदाह, रसायनिक क्षोभकों या संधिवात से शरीर के किसी भी भाग में आई सूजन को कम करने में यह रसायन उल्लेखनीय भूमिका निभाता है। विलियम फेनिकल का मानना है कि अन्य किन्हीं भी कारणों से शरीर पर प्रकट हुई सूजन को कम करने में स्यूडोटेरोसिन लाभदायक सिद्ध हो सकता है। निःसदेह यह रसायन दवाई के रूप में इक्कीसवीं सदी में बाजार में उपलब्ध होगा, क्योंकि विलियम फेनिकल ने स्यूडोटेरेसिन का पेटेन्ट करा लिया है और ला जोल्ला स्थित एक जैव-प्रौद्योगिक कंपनी को इसका उत्पादन करने की मंजूरी भी मिल गई है।

दूसरी ओर, विलियम फेनिकल और उनके सहयोगी एक अन्य परियोजना के अंतर्गत अधिक से अधिक समुद्री कवकों को प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं ताकि इनमें भी कुछ चिकित्सीय गुणता सिद्ध हो सके। वे अब तक समुद्री कवकों के 3000 नमूने प्राप्त कर चुके हैं जिनका एक साथ अध्ययन किया जा रहा है और हजारों नमूने अभी प्राप्त करने हैं। लेकिन एक महत्वपूर्ण अध्ययन के अंतर्गत ऐसा पाया गया है कि तटवर्ती मैंग्रोव वनों के दलदली भाग के अवसाद से भी कवक पृथक किए गए हैं, वे रोगों को जन्म देने वाले खमीर-कैंडिडा अल्बीकन्स को नष्ट करने में काफी मदद करते हैं। जब कैंडिडा अल्बीकन्स में ये कवक डाले गए तो पेट्रीडिश में होने वाला परिवर्तन किसी अजूबे से कम नहीं था। कैंडिडा अल्बीकन्स ने ऐसा रंग बदला कि मानों वे नौ दो ग्यारह हो गए हों। विभिन्न समुद्री कवकों पर इस तरह के परीक्षण कर विलियम फेनिकल इनसे कुछ ऐसे यौगिक प्राप्त करना चाहते हैं जो कैन्सर कोशिकाओं या हर्पीज जैसे विषाणुओं का अंत करने में सहायक हों। वैसे विलियम फेनिकल आस्ट्रेलिया के तट से दूरस्थ समुद्र के छिछले भाग से एल्यूथेरोबिन नामक रसायन पहले ही प्राप्त कर चुके हैं। यह रसायन उन्हें समुद्र के उस भाग में विद्यमान चितकबरे गोलाकार कोमल मूंगे से मिला जो कैन्सर कोशिकाओं को फैलने से रोकता है। एल्यूथेरोबिन कैन्सर के उपचार में बिल्कुल वैसे ही कार्य करता है जैसे कि टेक्साला टेक्सॉल जिसे सन् 1971 में धनुर्वृक्ष (यू ट्री) के छाल से पृथक किया गया था जिसका निर्माण अब प्रयोगशालाओं में किया जाने लगा है। टैक्सॉल पर अध्ययन करने से ऐसा ज्ञात हुआ था कि कैन्सर कोशिकाओं की वृद्धि में सहायक प्रोटीनों ट्यूबयुलिन को यह जकड़ लेता है जिससे कैन्सर कोशिकाएं विभाजित नहीं हो पाती हैं। ठीक इसी प्रकार से समुद्र से प्राप्त एल्यूथेरोबिन नामक रसायन कैंसर कोशिकाओं को काबू में रख सकता है। अब तो एल्यूथेरोबिन का निर्माण इलाचयी और सौंफ जैसी सस्ती वस्तुओं द्वारा प्रयोगशालाओं में किया जा रहा है। इसका श्रेय स्क्रिप्स अनुसंधान संस्थान के रसायनविद् के.सी. निकोलाज को जाता है। एल्यूथेरोबिन से मिलते-जुलते अन्य यौगिक समुद्र से प्राप्त किए गए हैं, जिनमें से एक स्पंज से मिला है और दूसरा भूमध्यसागरीय मूंगे से। लेकिन बात वहीं की वहीं है। दरअसल जब किसी भी बीमारी के लिए किसी दवा का निर्माण होता है तो उसे परीक्षणों की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है और यदि कहीं थोड़ा सा भी संदेह उत्पन्न हो तो उसे तुंरत निरस्त कर दिया जाता है और जब बात कैन्सर की हो तो मामला और भी संवेदनशील बन जाता है। चाहे वृहदांत्र कैन्सर हो या स्तन कैन्सर या फिर आंत का कैन्सर हो या ल्यूकीमिया, इनके उपचार में सहायक हाल ही में खोज की गई दवा को इन सभी प्रकार के कैन्सर कोशिकाओं के क्रमवार परीक्षण से गुजरना पड़ता है। इस

दवा द्वारा कैन्सर कोशिकाओं के विनाश के साथ-साथ आस-पड़ोस की स्वस्थ्य कोशिकाओं को किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुंचनी चाहिए। इस दवा का शुद्धिकरण होना आवश्यक है और इसकी आण्विक संरचना भी ज्ञात होनी चाहिए। इतना ही नहीं, इसका आरंभिक प्रयोग चूहे-जैसे जीव पर सफल होना चाहिए और बाद में मानव पर। इतने कड़े परीक्षणों से गुजरने के बाद समुद्र से खोजे गए ये नए रसायन जरा भी डगमगाए नहीं परंतु वैज्ञानिक अभी भी मानव में सुरक्षा की दृष्टि से इन्हें परिपूर्ण बनाना चाहते हैं। यही कारण है कि कैन्सर के उपचार में सहायक समुद्र से प्राप्त 30 से अधिक औषधियां अभी भी जांच की अपनी आरंभिक अवस्थाओं से गुजर रही हैं। इनमें निम्नलिखित मुख्य हैं: (डिडेमनिन बी) इसे कैरिबियन समुद्र से पृथक किया गया था। कैन्सर के उपचार में यह अत्यधिक प्रभावशाली पाई गई परंतु इसमें अधिक जहरीलापन होने के कारण इसकी जांच पर 1995 में रोक लगा दी गई। अब अनुसंधानकर्ता इस औषधि को सीधे उन रक्तवाहिनियों में पहुंचाना चाहते हैं जो कैन्सर कोशिकाओं को पोषित करती हैं। कहा जा रहा है कि इससे विषैलेपन का मनुष्य पर कुछ भी असर नहीं पड़ेगा। 2. ब्रायोस्टैटिन- लगभग सभी समुद्रों के छिछले पानी में पाए जाने वाले जीव बुगुला नेरिटिना से इस औषधि को पृथक किया गया था। यह रक्त कैंसर में अधिक प्रभावी पाई गई है। इस पर परीक्षण अभी भी जारी है। 3. डोलेस्टैटिन-10 यह भारतीय महासागर के मौलस्क-बेल्ला आरिक्यूलेरिया जिसे समुद्री खरगोश भी कहते हैं, से प्राप्त हुई है। इसका निर्माण प्रयोगशाला में भी किया जा रहा है और इसे त्वचा के कैन्सर में काफी उपयोगी माना जा रहा है। इसके परीक्षण का प्रथम दौर सफलतापूर्वक संपन्न हो चुका है। एक्टिनैसिडीन 748 इसे कैरिबियन समुद्र के मैंग्रोव के दलदली भागों में वास कर रहे समुद्री व्हिप एक्टिनैसिडिया टर्बिनेटा से प्राप्त किया गया है।

प्रयोगशाला में जांच के दौरान यह चूहों के ल्यूकीमिया और मनुष्य के स्तर कैन्सर में प्रभावी पाई गई है। अमेरिका में यह परीक्षण की प्रथम अवस्था से गुजर रही है और फ्रांस में द्वितीय कई कंपनियां समुद्री जीवाणुओं के एंजाइमों की मदद से नई दवाईयां बनाने का प्रयत्न कर रही हैं। इसके लिए वे पहले समुद्री जीवाणुओं को समुद्र से बाहर निकालकर उनके शरीर से ऐसे जीन पृथक कर रही हैं, जो एन्जाइमों का निर्माण करती हैं और ऐसे जीनों को बाद में प्रयोगशाला के जीवाणु ई-कोलाई में प्रविष्ट करा दिया जाता है ताकि विभिन्न रोगों के उपचार में सहायक इन एंजाइमों का इतना अधिक उत्पादन हो कि इन पर विस्तृत अध्ययन किया जा सके। इतना ही नहीं समुद्र में पाए जाने वाले वनस्पति-समुदाय में रहने वाली फफूंदी से ऐसे कुछ प्रोटीन प्राप्त किए गए हैं जो विषाणुओं को मिनटों में नष्ट कर देते हैं।

इतने अथक प्रयासों के बावजूद समुद्रों में से प्राप्त की गई औषधियों में से एक भी औषधि बाजार तक पहुंच नहीं पाई है। इसमें आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि टैक्सॉल-जैसी दवा को मंजूरी मिलते-मिलते दो दशक लग गए थे। इसलिए यह तो तय है कि नई सदी का चिकित्सा विज्ञान बहुत कुछ समुद्रों पर निर्भर करेगा। नई सदी की बीमारियों को ध्यान में रखकर विलियम फेनिकल की देखादेखी समुद्र विज्ञान से संबद्ध विश्व के अनेक वैज्ञानिक अभी से समुद्र की छानबीन करने में जुटे हुए हैं। उनका मानना है कि चूंकि पृथ्वी के 70 प्रतिशत भाग में जल है, अत: भविष्य में समुद्रों में से ऐसे सूक्ष्मजीव खोजे जा सकते हैं जिनके बारे में किसी ने न तो सुना होगा न ही देखा होगा। पृथ्वी पर तो इनका अस्तित्व कभी रहा ही नहीं होगा। इन्हें प्राप्त करने की समस्या एक ही है कि संसाधनों की कमी के कारण वैज्ञानिकों के लिए समुद्रों में विचरण करना एक कठिन कार्य है, क्योंकि किसी भी समुद्री जीव से चाहें वह स्पंज हो या मूंगा, विषाणु हो या जीवाणु जब कोई उपयोगी तत्व हाथ लगता है तो इन जीवों की इतनी बड़ी संख्या की आवश्यकता होती है कि इन्हें समुद्री जल से ढूंढकर प्रयोगशाला तक लाना एक दुष्कर कार्य होता है। आशा है इस समस्या का हल भी ढूंढ़ लिया जाएगा ताकि इक्कीसवीं सदी में हृदय-रोग और मनोरोगों जैसी भयावह बीमारियों से छुटकारा मिल सके।

765 HRD/2013—3A

समुद्र में मुख्यत: चार रंग की शैवाल पाए जाते हैं जो जीव-जंतुओं का भोजन हैं, मगर अब कई देशों की अर्थ-व्यवस्था में समुद्री शैवाल को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया है। कई देशों में समुद्री शैवाल का उपयोग खाद्य, चारा, खाद, औषधि तथा उद्योगों में किया जाता है। इनकी भारतीय जातियों में प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट की काफी मात्रा मौजूद है। आजकल व्यापारिक महत्व रखने वाले शैवाल पदार्थ हैं ऐगार, ऐगार एजाजिन और कैरागिनन।

भारत के समुद्री जल में भूरे शैवाल की कई जातियां हैं। इनमें से एक विशेष जाति सरगासम से एल्जिनिक अम्ल और सोडियम एल्जीनेट प्राप्त करने की विधियां भावनगर के संस्थान ने विकसित की है। ये रसायन, कपड़ा उद्योग में उपयोगी हैं। सोडियम एल्जीनेट एक बढ़िया जेली पदार्थ है। इसलिए इसका उपयोग आइसक्रीम, मुरब्बे, क्रीम, दवाइयां आदि बनाने में होता है।

लाल शैवाल में ऐगार-ऐगार और कैरागिनन प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। खाद्य पदार्थों में ऐगार-ऐगार का उपयोग सैकड़ों वर्षों से होता आ रहा है। भावनगर के संस्थान द्वारा विकसित प्रक्रम के जरिए ग्रासिलेरिया और जिलेडिएला नामक शैवालों से ऐगार-ऐगार का निर्माण किया जा रहा है। विभिन्न जीवाणुओं की पहचान के लिए भी ऐगार-ऐगार कारगर सिद्ध हुआ है। कैरागिनन की जेली कुछ पतली होने के कारण इसका उपयोग मिल्क चाकलेट और टूथ-पेस्ट आदी बनाने में होता है।

हरी शैवाल की अल्वा और ऐन्ट्रोमार्फा जैसी जातियों में से प्रोटीन, विटामिन, खनिज तथा आवश्यक एमीनो अम्ल प्राप्त होते हैं। सौराष्ट्र के समुद्र तट पर अधिकतर पाई जाने वाली अल्वा से इन सभी आवश्यक तत्वों को पृथक किया गया है।

कुछ देशों में विशिष्ट किस्म के शैवालों से आयोडीन प्राप्त किया जाता रहा है। भारत में पाए जाने वाले एस्पेरागोप्सिस नामक लाल शैवाल में आयोडीन पाया जाता है। समुद्र के आस-पास रहने वाले लोगों के भोजन में इन शैवालों का समावेश होता रहता है, इसलिए इन्हें गलगंड (घेंघा) रोग नहीं होता। भावनगर संस्थान के वैज्ञानिक इन विभिन्न किस्म के शैवालों की खेती करने की नई-नई तकनीकें विकसित करने में जुटे हुए हैं।

भारतीय समुद्र तट के किनारे-किनारे अर्धशुष्क बालू के टिब्बों के रूप में बहुत सारी भूमि बेकार पड़ी हुई है। इस बेकार पड़ी भूमि पर औद्योगिक दृष्टि से उपयोगी पौधों की खेती करने की दिशा में भावनगर के संस्थान ने कई सफल प्रयोग किए हैं। संस्थान ने गुजरात के अर्धशुष्क बालू के टिब्बों पर और उड़ीसा की उपआर्द्र परिस्थितियों में अरिजोटा से लाए गए जोजोबा (साइमोंडसिया चाहलेन्सिस लिनिअस) पादप को प्रवर्तित किया है। करीब 3 मीटर की ऊंचाई तक पहुंचने वाली इस काष्ठिल झाड़ी की जड़ें 12 मीटर की गहराई तक चली जाती हैं। इसमें वर्ष में दो बार, गरमी तथा जाड़े में फूल आते हैं।

जोजोबा के बीजों में 50 से 60 प्रतिशत तक मोम (तेल) होता है जो बड़े औद्योगिक महत्व का साबित हुआ है। रासायनिक दृष्टि से यह वसातिमि (स्पर्म ह्वेल) से काफी मिलता-जुलता है। यह तेल बढ़िया स्नेहक तो है ही, इससे शैम्पू, क्रीम और साबुन जैसी प्रसाधन सामग्री तैयार की जा सकती है। औषधि उद्योग में भी इसका उपयोग होता है।

जोजोबा की तरह ही अर्धशुष्क व लवणीय भूमि में पनपने वाला एक अन्य पौधा है सल्वादोरा। इसके बीजों से 30 से 40 प्रतिशत तक तेल निकल सकता है। इसी तरह संस्थान के वैज्ञानिकों ने और भी कुछ किस्म के उपयोगी पौधे समुद्रतट के समीप की लवणीय भूमि में में सफलता प्राप्त की है। दरअसल रेतीली, लवणीय जमीन में सैकड़ों किस्म के पेड़-पौधे फलते-फूलते रहते हैं। भावनगर में नमक के खेतों के आसपास, जहां से लवण जल लिया जाता है, वहां एक विशिष्ट प्रकार के साग के कई सारे छोटे-छोटे पौधे उगते दिखाई देते हैं। इसे ''मुरड़ की भाजी'' कहते हैं। यह भाजी बहुत ज्यादा खारी होती है। व्रत-उपवास के दिन जो लोग सामान्य नमक का

765 HRD/2013—3B

उपयोग नहीं करते वे नमकीन स्वाद के लिए इसी मुरड़ की भाजी का उपयोग करते हैं।

राष्ट्रीय दवा परियोजना

1990-91 में महासागर विकास विभाग द्वारा समुद्र से दवाओं के स्रोतों की खोज एवं विकास के लिए ''राष्ट्रीय दवा परियोजना'' शुरू की गई। इस बहु-संस्थानिक परियोजना का उद्देश्य समुद्री जीवों और वनस्पतियों से उच्च गुणवत्ता वाली दवाइयां और रसायनों को विकसित करना है। इस परियोजना के अंतर्गत कार्य करने वाले सहयोगी संस्थान अपने-अपने क्षेत्रों में समुद्री जीवों के नमूने एकत्र करते हैं। इन नमूनों को गोवा-स्थित राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान के राष्ट्रीय भंडार में रखा जाता है।

महासागर विकास मंत्रालय की ''सागर से औषधि परियोजना'' के अंतर्गत अब तक विभिन्न तटीय क्षेत्रों के समुद्री जीवों और वनस्पति की 800 किस्मों की पहचान करके इन्हें एकत्र किया गया है। लगभग 60 नए पौधों और 190 नए जीवों को सामान्य जैविक छंटनी के लिए इकट्ठा किया गया। जैविक गतिविधियों को साबित करने और तदुपरांत अध्ययन के लिए 19 पौधों और जीवों को फिर से एकत्रित किया गया। 23 पदार्थों में जैविक गतिविधि देखी गई और सात जंतुओं में शुद्ध यौगिक पदार्थ।

उत्पाद के विकास के लिए छह समुद्री जीवों पर काम शुरू किया गया, जिनमें मधुमेह-रोधी/दस्त-रोधी, वसा की अधिकता कम करने, कोलेस्टेरॉल तथा ऑक्सीकरण कम करने, बैक्टीरिया तथा फफूंदी को नष्ट करने और झल्ली मारने की क्षमता को शामिल किया गया है। मधुमेह-रोधी तथा दस्त-रोधी गतिविधियों के लिए सक्रिय रसायनों को अलग करने के लिए सी.डी.आर.-134 के लिए जैव गैस निर्देशित सत्व आशोधन एवं विष्कर्षण (बायो गैस गाइडेड मॉडीफिकेशन ऑफ एक्सट्रेक्शन) प्रक्रिया को सफल पाया गया। उनसे तैयार एक पदार्थ ने पशुओं के मॉडलों पर निरंतर मधुमेह-रोधी क्रिया दिखाई और उनमें दस्त-रोधी क्रिया नहीं दिखाई दी। अन्य तैयार पदार्थ में दस्त-रोधी क्रिया थी। इन दोनों तैयार पदार्थों और वसा की अधिकता को कम करने वाले मत्स्य तेल के चिकित्सालय में इस्तेमाल से पहले के अध्ययन संतोषपूर्वक चल रहे हैं। चिंता दूर करने, कोलेस्टेरॉल तथा ऑक्सीजन-रोधी, फफूंदी जीवाणु को नष्ट करने के लिए उत्पाद-विकास कार्य भी किया जाएगा।

2

आहार में कैल्सियम की उपयोगिता

सतीश चंद्र सक्सेना

भोजन में कुछ खजिन तत्वों की उपस्थिति, उपयोगिता और महत्व के बारे में हमें काफी समय से जानकारी है। आहार में लोह तत्व की उपयोगिता के बारे में हमें सबसे पहले ज्ञान हुआ। लौह तत्व वस्तुत: लाल रुधिर कणिकाओं (आर.बी.सी) का एक प्रमुख घटक है और शरीर को इसकी नियमित उपलब्धता नितांत आवश्यक है। शिशुओं, गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं को तो आहार के माध्यम से या अन्यथा लोह तत्व की अतिरिक्त मात्रा में आवश्यकता होती है। लौह तत्व की कमी से अरक्तता (अनीमिया) रोग हो जाता है जो भारत में पर्याप्त व्याप्त है। अरक्तता की रोकथाम के लिए आहार में लोह तत्व की प्रचुरता वाले भोजन के साथ ही लोह तत्व की जैव उपलब्धता भी आवश्यक है। जैव उपलब्धता से तात्पर्य लौह तत्व के शरीर में अवशोषण और उपयोग से है।

शरीर के लिए दूसरा आवश्यक तत्व संभवत: कैल्सियम ही है जो अस्थियों और दांतों को सुदृढ़ बनाता है। हमारे शरीर को आहार के माध्यम से प्रतिदिन 1000-1200 कैल्सियम की आवश्यकता होती है। सभी सफेद खाद्य वस्तु और विशेषकर अंडे की सफेदी, दुग्ध उत्पाद यथा दूध, पनीर तथा दही आदि में कैल्सियम पर्याप्त मात्रा में पाया जाती है। अनाजों में बाजरे में कैल्सियम तथा लौह तत्व दोनों ही पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं।

कुछ वर्षों पहले किए गए शोध कार्यों से ज्ञात हुआ है कि शरीर को इन दो खजिनों के अतिरिक्त जिंक, मैग्नीशियम, कॉपर, मैंगनीज, फॉस्फोरस (मुख्यत: फॉस्फेटों के रूप में), निकैल, क्रोमियम, सेलीनियम तथा मोलिब्डेनम जैसे तत्वों की भी सूक्ष्म मात्रा में आवश्यकता होती है। इनकी कमी से किसी न किसी प्रकार की दुर्बलता अथवा रोग उत्पन्न हो सकते हैं। ये सूक्ष्ममात्रिक तत्व सूक्ष्म पोषक तत्व (माइक्रोन्यूट्रिएन्ट) कहलाते हैं। ये सूक्ष्म पोषक तत्व हमें संतुलित और पोषक आहार, दूध, दही, पनीर, फलों तथा हरी सब्जियों से प्राप्त होते हैं। सामान्यत: अलग से इनके सेवन की आवश्यकता नहीं पड़ती।

आजकल बाजार में ऐसी कई औषधियां उपलब्ध है जिनमें लगभग ये सभी सूक्ष्मपोषक तत्वों की अल्प मात्राओं के साथ विटामिन बी (काप्लैक्स), विटामिन सी तथा विटामिन डी भी संयुक्त रूप से उपस्थित रहते हैं। वास्तव में इन औषधियों की विशेष परिस्थितियों में अथवा किसी न किसी तत्व की कमी होने पर ही आवश्यकता पड़ती है। वैसे काजू, अखरोट, बादाम, पिस्ता, हेजेलनट तथा मूंगफली आदि गिरीदार फलों में ये पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। आज के सुसभ्य और सुसंपन्न परिवारों में इन औषधियों की अच्छी मांग है। प्रतिदिन इनके एक कैप्सूल का सेवन फैशन सा बन गया है। औषधि कंपनियां भी इन उत्पादों को मुंहमांगी कीमत पर बेचकर अच्छा लाभ कमा रही हैं।

यह एक निर्विवाद तथ्य है कि आहार में कैल्सियम की प्रतिदिन पर्याप्त मात्रा, हमें जीवन के बाद के वर्षों में अस्थि सुषिरता (ऑस्टियोपोरेसिस) अर्थात् अस्थियों को हल्का हो जाने से या उनके घनत्व कम हो जाने से हमारी रक्षा

करती है। महिलाओं में रजोनिवृत्ति (मेनोपॉज) के बाद कैल्सियम की कमी के कारण अस्थिसुषिरता हो जाना एक आमबात है जिसके कारण मामूली चोट या झटकों आदि से अस्थिभंग अर्थात फ्रैक्चर हो सकते हैं। आधुनिक अनुसंधानों से पता चला है कि 50 वर्ष की आयु तक के वयस्कों को इस खनिज की 1000 मि.ग्रा. की प्रतिदिन मात्रा अस्थियों को स्वस्थ्य बनाने के अतिरिक्त कई जान लेवा रोगों से भी हमारा बचाव करती है अथवा उनकी संभवना को कम करती है।

(1) बृहदांत्र (कोलन) कैन्सर:

पश्चिमी देशों में महिलाओं में अन्य प्रकार के कैन्सरों की तुलना में बृहदांत्र कैन्सर अधिक पाया जाता है। ''जर्नल ऑफ नेशनल कैन्सर इन्स्टीट्यूट'' में प्रकाशित एक अध्ययन के आधार पर जिन लोगों ने दूध का अधिक सेवन किया उनमें कोलन कैन्सर का खतरा कम देखने को मिला। कैल्सियम की पर्याप्त मात्रा के बिना पाचन के सहज उपोत्पाद पित्त (बाइल) तथा वसा अम्ल, बृहदांत्र में क्षोभ उत्पन्न करते हैं जिससे कोशिका मरम्मत की आवश्यकता की स्थिति लगातार बनी रहती है और सामान्य कोशिकाओं के कैन्सर कोशिकाओं में परिणत होने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो सकती है। जितनी अधिक नई कोशिकाएं जनित होंगी, उनके डी एन ए उतने ही अधिक आविषी कर्मकों (टॉक्सिक एजेन्टो) से ग्रस्त हो सकते हैं। जिसके कारण कोशिका विभाजन तेजी से होने लगता है। विशेषज्ञों का कहना है कि कैल्सियम इन कोलन अम्लों से संयोजित हो जाता है और क्षति को रोकता है।

(2) मासिक धर्म पूर्व संलक्षण:

आहार में कैल्सियम की पर्याप्त मात्रा होने पर महिलाओं में माहवारी के उन कठिन दिनों से संबंधित भावदशा (मूड) परिवर्तन, सिर दर्द, चिड़चिड़ापन और चिंता में कमी देखने को मिलती है। एक शोध अध्ययन के अनुसार कैल्सियम की 1200-1500 की दैनिक मात्रा से महिलाओं को इन लक्षणों से 50 प्रतिशत तक राहत मिलती है। कैल्सियम की समुचित मात्रा से महिलाओं को न केवल उन कठिन दिनों में आराम मिलेगा अपितु भविष्य में अस्थिसुषिरता को रोकने में भी सहायता मिलेगी, क्योंकि, एक ही हार्मोन दोनों स्थितियों को उत्तेजित करता है। महिलाओं में मासिक धर्म संलक्षण की अधिक उग्रता उनमें कैल्सियम की न्यूनता दर्शाती है। दूसरे शब्दों में उनमें अस्थियों को क्षतिग्रस्त होने की संभावना अधिक हो जाती है।

(3) उच्च रक्त दाब:

डॉक्टरी भाषा में उच्च रक्त दाब (हाइपर टेन्शन) को ''साइलेन्ट किलर'' कहा जाता है क्योंकि प्रारंभ में इसके विशेष लक्षण दिखाई नहीं देते। अधिक समय तक उच्च रक्त दाब रहने पर हृद्रोगों की संभावना बढ़ जाती है जो पुरुषों और महिलाओं में (विशेषकर रजोनिवृत्ति के बाद) समान रूप से घातक हो सकती है। गर्भावस्था में उच्च रक्तदाब का रहना अधिक खतरनाक हो सकता है। डेरी उत्पादों से प्राप्त कैल्सियम के अतिरिक्त अल्प वसा युक्त संतुलित आहार से रक्त दाब को नियंत्रित किया जा सकता है। 'डाइटेरी ऐप्रोचेज टु स्टॉप हाइपरटेन्शन' द्वारा किए गए अध्ययन से स्पष्ट हुआ है कि कई पोषक तत्वों में से कैल्सियम एक ऐसा तत्व है जो रक्तदाब में कमी लाता है।

(4) गुरदे की पथरी:

जिन लोगों को गुरदे की पथरी की शिकायत होती है वे जानते हैं कि निक्षेपित खनिजों के सूक्ष्मकण जब मूत्रमार्ग से निकलकर बाहर आते हैं तो कितनी असहनीय पीड़ा होती है। अधिकांशत: गुरदे की पथरी कैल्सियम और ऑक्सलेट से बनती है। चुकंदर, टमाटर, पालक और गिरीदार मेवों/दृढ़फलों आदि में ऑक्सलेट लवण पाए जाते हैं। शरीर में भी ऑक्सालेट नियमित रूप से लगातार बनते हैं। सामान्यत ऑक्सलेट और कैल्सियम विलीन अवस्था में रहते हैं और मूत्र के साथ शरीर से बाहर निकल जाते हैं। परंतु, जब कैल्सियम और ऑक्सलेट बहुत अधिक सांद्र अवस्था में रहते हैं तो वे ठोस होने लगते

हैं। और यह स्थिति चाय या कॉफी के कप में नीचे बैठी चीनी से भिन्न होती है क्योंकि वह थोडी देर में स्वत: घुल जाती है। हॉरवर्ड में 90, 000 महिलाओं पर 12 वर्षों तक किए गए अध्ययनों से पता चला कि जो महिलाएं आहार के माध्यम से अधिक कैल्सियम का सेवन करती थीं उनमें गुरदे की पथरी की संभावना न्यूनतम पाई गई। इसका कारण यह हो सकता है कि पाचन के दौरान संभवत: कैल्सियम, ऑक्सलेट के साथ संयुक्त हो जाता है। जिससे उसके गुरदे में जमा हो जाने की संभावना बहुत कम हो जाती है। इसके साथ-साथ इसी अध्ययन में यह भी मत व्यक्त किया गया था कि यदि कैल्सियम अनुपूरक औषधियों का भोजन के साथ सेवन न किया जाए तो कुछ व्यक्तियों के गुरदों में पथरी बन सकती है।

(5) स्तन कैन्सर:

फिनलैंड में किए गए एक अध्ययन के अनुसार प्रतिदिन करीब तीन ग्लास दूध पीने वाली महिलाओं में दूध न पीने वाली महिलाओं की तुलना में स्तन कैंन्सर की संभावना कम रहती है। यह अध्ययन 4600 महिलाओं पर किया गया था। शोधकर्ताओं का मत है कि दूध में कैल्सियम के अतिरिक्त संयुग्मी (कॉन्जुगेटेड) लिनोइक अम्ल जैसे यौगिकों में सशक्त कैन्सर प्रतिरोधी गुण हो सकते हैं।

कैल्सियम अनुपूरक औषधियां

उचित स्थिति तो यह है कि शरीर के लिए आवश्यक कैल्सियम की मात्रा आहार के माध्यम से ही प्राप्त की जाए। अक्सर देखा गया है कि बहुत सी महिलाएं, भोजन के माध्यम से कैल्सियम की लगभग आधी ही मात्रा प्राप्त करती हैं। इस कारण उनमें कैल्सियम की कमी बनी रहती है। शरीर, कैल्सियम की अपेक्षिति शेष मात्रा को अस्थियों से खीच लेता है जिससे शीघ्र ही अस्थि सुषिरता के प्रभाव सामने आने लगते है। अस्थिर सुषिरता अथवा संधि शोथ (आर्थ्राइटिस) होने की स्थिति में चिकित्सक, कैल्सियम अनुपरक औषधियों के सेवन की सलाह देते हैं। कई औषधि निर्माता कम्पनियां, कैल्सियम के विभिन्न उत्पादों को अपने-अपने व्यापारिक नामों से बेचती हैं जो गोलियों या कैप्सूल के रूप में बाजार में उपलब्ध हैं। इन उत्पादों में कैल्सियम अक्सर कैल्सियम कार्बोनेट अथवा कैल्सियम साइट्रेट अथवा किसी अन्य लवण के रूप में विद्यमान रहता है। इन दोनों की अवशोषण क्षमता लगभग समान है। साथ में विटामिन डी अथवा अन्य विटामिन भी मिश्रित रहते हैं। विटामिन डी की उपस्थिति में कैल्सियम का अवशोषण अच्छा होता है। ग्लैक्सो कम्पनी द्वारा निर्मित चिरपरिचित आस्टो कैल्सियम की गोलियां बाजार में आज भी उपलब्ध हैं और अपेक्षाकृत सस्ती भी हैं। आहार (डाइटरी सप्लीमेन्ट्स) बनाने वाली सुप्रसिद्ध कंपनी एमवे न्यूट्रिलाइट कैल्सियम के साथ मैग्नीशियम मिश्रित गोलियां बाजार में कैलमेग के नाम से बेचती है। उक्त कंपनी के अनुसार मैग्नीशियम की उपस्थिति में कैल्सियम के अवशोषण में सुधार होता है। इस कंपनी के सभी उत्पाद बहुत महंगे हैं। अति विशिष्ट परिस्थिति में कैल्सियम के इंजेक्शन भी दिए जाते हैं।

कैल्सियम अनुपरक औषधियां डॉक्टर की सलाह पर ही ली जानी चाहिए। यदि स्वयं को अथवा परिवार के सदस्यों को गुरदे में पथरी की शिकायत रही हो तो कैल्सियम अनुपूरक औषधियों के सेवन में विशेष सावधानी बरती जानी चाहिए। शरीर में कैल्सियम का अधिकतम अवशोषण हो इसके लिए कैल्सियम अनुपूरक औषधियों का सेवन दोपहर तथा रात्रि के भोजन के साथ किया जाना चाहिए। ऐसा करने से कैल्सियम की अवशोषण मात्रा में 10-15 प्रतिशत तक वृद्धि हो जाती है। कैल्सियम अनुपूरक औषधियां ख्याति प्राप्त निर्माता कंपनियों की ही प्रयोग कि जानी चाहिए।

निष्कर्ष:

प्रस्तुत आलेख में हमारे शरीर के लिए आवश्यक कैल्सियम खनिज के महत्व व उपयोगिता का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। जैसा कि हम जानते हैं कि आयुर्विज्ञान के क्षेत्र में मान्यता स्थायी नहीं होती। नए-नए अनुसंधानों, शोधकार्यों और विशेषज्ञों के मतों में

भिन्नता होने के कारण पुरानी धारणाओं में बदलाव आते रहते हैं और कभी कभी तो वे शीघ्र ही अमान्य हो जाती हैं। इस आलेख में कैल्सियम के संदर्भ में किए गए कुछ शोधकार्यों का भी उल्लेख किया गया है। शोधकार्यों से प्राप्त निष्कर्ष तो सैदव ही वाद-विवाद का विषय रहते हैं और इनकी प्रमाणिकता सिद्ध करने के लिए अधिक गभीर अध्ययन तथा अधिक प्रयोगों की आवश्यकता होती है। स्थिति तब और भी जटिल हो जाती है जब एक ही प्रकार के अध्ययन से परस्पर विरोधी परिणाम प्राप्त होते हैं। अत: शोध अध्ययनों से तत्काल कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं निकाला जाना चाहिए।

परंतु, यह निर्विवाद तथ्य है कि शरीर को स्वस्थ रखने के लिए हमें प्रतिदिन 1000-1200 मि.ग्रा. कैल्सियम की आवश्यकता है जिसकी पूर्ति यथा संभव आहार द्वारा ही की जानी चाहिए ताकि कैल्सियम अनुपूरक औषधियों का सहारा न लेना पड़े।

3

जैविक खेती के प्रमुख आयाम, संभावनाएं एवं समस्याएं

डॉ. इन्दु भूषण पांडेय एवं डॉ. दीनानाथ शुक्ला

भारत में 1960 के दशक में हरित क्रांति का सूत्रपात हुआ जिससे फसलों की उत्पादकता बढ़ाने हेतु नवीन तकनीकों का विकास हुआ। इस तकनीकी पैकेज में एकल फसल प्रणाली को बढ़ावा देने के लिए उच्च उत्पादकता वाली जातियों को प्रोत्साहित किया गया। इसके अतिरिक्त मशीनों द्वारा भूमि की तैयारी, खरपतवार नष्ट करने हेतु खरपतवारनाशी रसायनों का प्रयोग, रोग एवं कीट प्रबंधन हेतु कीटनाशियों के प्रयोग के साथ ही पौधों को पोषक तत्व उपलब्ध कराने हेतु रासायनिक खादों का इस्तेमाल एवं सिंचाई हेतु पर्याप्त पानी का उपयोग आदि उपाय सम्मिलित थे। वर्तमान में खेती मुख्यत: खनिज एवं कृषि रसायनों पर आधारित है परिणामत: निरंतर महंगी खेती, विषाक्त भूमि, जल तथा वातावरण प्रदूषण की समस्या बढ़ती जा रही है। कृषि रसायनों के अंधाधुंध प्रयोग के कारण भूमि में जीवांश की निरंतर कमी होती जा रही है। देश के अधिकांश भू-भाग में जैविक कार्बन की मात्रा 0.5 प्रतिशत से कम, तथा कई स्थानों पर 0.2 प्रतिशत से भी कम हो गई है। ऐसी अवस्था में भूमि की उत्पादन क्षमता दिनोंदिन कम होती जा रही है। परिणामस्वरूप खेती महंगी होती जा रही है। पानी के स्रोत या तो रसायनों के प्रयोग से प्रदूषित हो गए या सिंचाई के लिए उनका अत्यधिक दोहन कर लिया गया। कीटनाशी एवं रसायनों के अवशेषों के खाद्य पदार्थों एवं पेयजल में आ जाने से मानव स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। आधुनिक पद्धति की खेती के दुष्परिणामों को देखते हुए आजकल जैविक खेती और जैविक खाद्य उत्पादों की लोकप्रियता एवं मांग दिनों दिन बढ़ती जा रही है। यूरोपीय एवं अमेरिकी देशों के अतिरिक्त भारत में भी जैविक खाद्यानों की खासी मांग हो रही है।

जैविक खेती का परिदृश्य

जैविक खेती, कृषि उत्पादन की एक ऐसी प्रणाली है जिसमें कृत्रिम रसायनों की बजाए मृदा की उत्पादकता को बनाए रखने, पौधों को उपयोगी तत्व उपलब्ध कराने, खरपतवार तथा कीट नियंत्रण के लिए फसल चक्र, फसल अवयव, जानवरों से प्राप्त गोबर खाद, दलहनी फसलों का समावेश, हरी खाद, अन्य स्रोतों से प्राप्त अवशेष और जैविक खरपतवार एवं कीट प्रबंधन विषयों के कुशल प्रबंधन पर ध्यान दिया जाता है। जैविक खेती भारत की ही पारंपरिक कृषि प्रणाली है, विश्वभर को यह कृषि व्यवस्था भारत की ही देन है। अकार्बनिक उर्वरकों एवं रासायनिक औषधियों की खोज से पहले भारतीय किसान मुख्यत: जैविक किसान थे। किसी जमाने में पश्चिमी देशों ने इस कृषि प्रणाली को पिछड़ा और अवैज्ञानिक बताकर सारे विश्व सहित भारत को भी आधुनिक कृषि प्रणाली में शामिल कर लिया लेकिन आज जब आधुनिक खाद्यान्नों की गुणवत्ता और स्वास्थ्य, पर्यावरण, मौसम और कृषि भूमि की दृष्टि से दोष उजागर हो रहे हैं तो पश्चिमी देश जैविक खाद्यन्नों के रूप में इसी कृषि प्रणाली को अपनाने के हिमायती बने हुए हैं। हमारे देश में जैविक खेती कोई नई पद्धति नहीं है बल्कि यह प्राचीनकाल से ही होती आ रही है। जैविक खेती का उद्देश्य यह है कि फसलों को इस तरह से उगाएं कि भूमि सजीव तथा अच्छी दशा में रहे जिसमें कार्बनिक

पदार्थों, जैसे फसल व पशु प्रक्षेत्र, कूड़ा-करकट और जलीय बेकार पदार्थों के प्रयोग तथा अन्य जैविक पदार्थों, हरी खाद, लाभदायक सूक्ष्मजीवों (जैव उर्वरक) द्वारा खेती हो, जो पौधे के पोषक तत्वों को मृदा मे मुक्त कर देते है और टिकाऊ उत्पादन को बढ़ाते हैं तथा साथ ही साथ पारि-अनुकूल एवं प्रदूषण मुक्त वातावरण प्रदान करते हैं। मुख्यत: जैविक खेती के अवयवों को 5 वर्गों में विभाजित किया गया है (1) हरी खाद (2) फसल चक्र, अंतरा सस्यन, सह सस्यन (3) जीवांश खाद (गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट) (4) जैव रोगनाशी (5) जैव उर्वरक।

जैविक खेती के मुख्य सिद्धांत

जैविक खेती के 5 मूलभूत सिद्धांत हैं:

1. पारंपरिक प्रबंधन की अपेक्षा जैविक प्रबंधन में भूमि का परिवर्तन।
2. फसल-उत्पादन प्रणाली को इस तरह से व्यवस्थित करना ताकि जैविक भिन्नता एवं सहगतिशीलता प्रणाली निश्चित रहे।
3. फसल उत्पादन के लिए वैकल्पिक स्रोतों के पोषक तत्वों का प्रयोग करना जैसे फसल-चक्र, अवशेष प्रबंधन एवं जीवांश खाद आदि।
4. खरपतवारों, रोगों एवं कीटों का प्रबंधन अच्छी प्रबंधन क्रियाओं द्वारा करना, जैसे भौतिक एवं कृषि क्रियाओं तथा जैविक पद्धति आदि।
5. जैविक दृष्टिकोण से पशु समुदाय का रखरखाव और उन्हें इस पद्धति का अभिन्न अंग बनाए रखना।

जैविक खेती के प्रमुख लक्ष्य

1. उचित मात्रा में उच्च गुणवत्ता के खाद्य पदार्थों को पैदा करना।
2. भूमि की उर्वरकता को बनाए रखना।
3. कृषि पद्धति में सूक्ष्मजीवियों, पौधों एवं जीव-जंतुओं के सहयोग से जैविक चक्र को बढ़ावा देना।
4. फसल उत्पादन में पानी का उचित उपयोग करते हुए पानी के स्रोतों का संरक्षण करना।
5. जैव पदार्थों एवं पोषक तत्वों की पूर्ति प्रक्षेत्र के संवृत तंत्र (क्लोज सिस्टम) से करना।
6. जैविक प्रक्षेत्र के उन अवयवों का प्रयोग करना जो उस प्रक्षेत्र में उपलब्ध हो।
7. पशुओं को उनके प्राकृतिक स्वरूप के अनुरूप रखने के लिए स्वस्थ वातावरण तैयार करना।
8. पशुपालन एवं फसल उत्पादन में सामंजस्य पूर्ण संतुलन बनाए रखना।
9. कृषि कार्यों द्वारा होने वाले प्रदूषण को न्यूनतम स्तर पर रखना।
10. गुणसूत्रों के फेरबदल से प्राप्त जातियों या अवयवों का प्रयोग करना।
11. वानस्पतिक विविधता को बनाए रखने के साथ-साथ वन्यजीवों का संरक्षण करना।
12. खरपतवार, रोग निवारण एवं कीट-नियंत्रण के लिए पारंपरिक ज्ञान का प्रयोग करना।
13. जैविक खेती द्वारा सामाजिक, पारिस्थितिक एवं आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति करना।

जैविक खेती के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए भूमि के स्वरूप, उसकी उर्वरता एवं जैव विविधता को बनाए रखना आवश्यक है, जिसकी प्राप्ति के लिए अच्छे फसल-चक्र का निर्माण करना, जैव पदार्थों का चक्रण करना, कीट-व्याधि एवं खरपतवारों के नियंत्रण के लिए कृत्रिम

रसायनों, कीटनाशियों, खरपतवारनाशी रसायनों का प्रयोग न करना, पशुओं का पालन उनकी मूलभूत आवश्यकताओं के अनुरूप करना तथा पशुओं को समुचित मात्रा में अच्छी गुणता युक्त चारा उपलब्ध कराना। जैविक खेती फसल उत्पाद एवं पशुपालन के बीच प्राकृतिक पारिस्थितिक सामंजस्य स्थापित करने में मदद करती है क्योंकि यह पद्धति फार्म पर खाद और पशुचारा हेतु आत्मनिर्भरता का सृजन करती है।

जैविक खेती के लाभ: जैविक खेती द्वारा उत्पादित उत्पाद गुण में टिकाऊ तथा अच्छे होते हैं। जानवरों से उत्पादित उत्पाद बहुत अच्छा होता है क्योंकि वे जैविक रूप से उत्पादित चारा तथा दाना खाते हैं। जहाँ जैविक खेती अपनाई जाती है वहाँ का भू-जल विषाक्त रसायनों से मुक्त होता है। इसके अतिरिक्त जैविक खेती:

1. पर्यावरण को स्वच्छ बनाए रखने में सहायक है, जिससे प्रदूषण का स्तर कम होता है।
2. उत्पाद में विषाक्त अवशेष के स्तर को कम करती है जिससे मनुष्यों एवं जानवरों के स्वास्थ्य पर घातक प्रभाव नहीं पड़ता है।
3. कृषि उत्पादों का उत्पादन उच्च एवं टिकाऊ बनाए रखने में सहायक है।
4. कृषि उत्पादन की लागत को कम एवं मृदा स्वास्थ्य में सुधार भी करती है।
5. छोटे लाभों के लिए प्राकृतिक स्रोतों की उचित उपयोगिता सुनिश्चित करना एवं भविष्य के लिए उनका संरक्षण करती है।
6. यह न केवल पशुओं एवं मशीनों की ऊर्जा बचाती हैं बल्कि फसल के खराब होने के खतरे को भी कम करती हैं।
7. भूमि को भौतिक गुण जैसे मृदा का भुरभुरी, दानेदार होना, मृदा रंध्रावकाश, मृदा वायु, पौधों की जड़ों का मृदा में आसानी से प्रवेश तथा जल धारण क्षमता में सुधार कर देती हैं।
8. भूमि के रासायनिक गुणों को सुधारती हैं, जैसे भूमि में पोषक तत्वों की आपूर्ति एवं जल धारणशक्ति साथ ही यह रासयानिक क्रियाओं को प्रोत्साहित कर पौधे के लिए उपयोगी बनाती हैं।
9. एकीकृत कृषि प्रणाली को समन्वित करती हैं।

वर्तमान कृषि प्रणाली को जैविक खेती में रूपांतरित करना:

वर्तमान कृषि-प्रणाली में जैविक मानकों के अनुरूप उत्पादन के विभिन्न अवयवों के प्रयोग करने की तिथि से उसके प्रमाणीकरण तक की अवधि को रूपांतरण (कन्वर्जन) अवधि कहते हैं। उत्पादकों को जैविक खेती अपनाने के लिए यह आवश्यक है कि उनका फार्म सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त प्रमाणीकरण संस्थाओं द्वारा प्रमाणित हो। इसके लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान रखना चाहिए:

1. उनके पास स्पष्ट रूपान्तरण योजना (कनवर्जन प्लान) हो जिसमें निम्न बातों का विवरण हो:

(क) वर्तमान में पारंपरिक तरीकों से की जा रही फसलों में प्रयोग होने वाले अवयवों जैसे रासायनिक खाद, कीट व्याधि प्रबंधन से संबंधित पूर्ण विवरण।

(ख) रूपांतरण (कनवर्जन) अवधि हेतु समय सारणी।

(ग) उन बातों का विवरण, जो रूपांतरण (कनवर्जन) के दौरान बदलेंगी।

2. रूपांतरण (कनवर्जन) अवधि के अंतर्गत जैविक खेती से संबंधित मानकों का समावेश।
3. प्रमाणीकरण संस्था के निरीक्षक द्वारा जैविक खेती हेतु अपनाई जा रही गतिविधियों, अवयवों एवं

मानकों के अनुरूप किए जा रहे कार्यों का निरीक्षण एवं मूल्यांकन।

4. रूपांतरण (कनवर्जन) अवधि की गणना प्रामाणिक संस्था को भेजे गए प्रार्थना-पत्र की तिथि या जैविक खेती हेतु प्रतिबंधित अवयवों के प्रयोग की अंतिम तिथि से की जा सकती है।

5. किसी जैविक फार्म के दस्तावेजीकरण द्वारा यह सत्यापित करें कि गत वर्षों या उससे अधिक में वर्जित अवयवों का प्रयोग नहीं किया गया है। प्रमाणीकरण संस्था उनकी प्रार्थना के अनुरूप 12 महीनों की अवधि के उपरांत प्रमाणित कर सकती है।

6. प्रसंस्करण इकाइयों का प्रमाणीकरण तभी किया जा सकता है जब स्पष्ट प्रमाण हो कि पारंपरिक रूप से उत्पादित किए गए उत्पाद एवं जैविक खेती के उत्पादों का प्रसंस्करण अलग से किया जा रहा है।

7. कृषि एवं खाद्य उत्पाद प्रसंस्करण विकास प्राधिकरण (ऐपेडा), कॉफी बोर्ड, चाय बोर्ड, नारियल विकास बोर्ड, कोको एवं काजू बोर्ड-जैसी संस्थाओं को प्रमाणीकरण एवं निरीक्षण का अधिकार वाणिज्य मंत्रालय द्वारा प्राप्त है।

8. वर्तमान समय में ऐपेडा के अंतर्गत केवल चार प्राधिकृत संस्थाओं को प्रमाणीकरण एवं निरीक्षण का अधिकार प्राप्त है जिनके नाम हैं इन्स्टीट्यूट ऑफ मार्केटोलोजी (आई.एम.ओ.) बेंगलूर, ई.सी. ओ.सी.ई.आर.टी. इन्टरनेशनल, औरंगाबाद, एस. जी.एस. इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, गुड़गांव तथा एस.के.ए.एल. इंडिया, बेंगलूर।

भारत में जैविक खेती की प्रमुख समस्याएं

1. देश में लगभग 70 प्रतिशत पशुओं का गोबर जलावन के रूप में खाना बनाने के उपयोग में लाया जाता है, तथा केवल 30 प्रतिशत पशुओं का गोबर खेती के लिए खाद के रूप में उपलब्ध हो पाता है।

2. इसी प्रकार लगभग 50 प्रतिशत फसल अवशेष का उपयोग या तो पशुओं के चारे के रूप में उपलब्ध किया जाता है या खेत में जला दिया जाता है जिससे ये जैव पदार्थ चक्रीकरण के लिए उपलब्ध नहीं हो पाते।

3. हरी खादों की वृद्धि तथा भूमि में इसके सड़ने के लिए अधिक पानी की आवश्यकता होती है, जिससे इसकी खेती केवल उन्हीं स्थानों पर हो सकती है जहां वर्षा अधिक होती हो या पानी की समुचित व्यवस्था हो।

4. उचित समय पर पर्याप्त मात्रा में गुणता युक्त जैविक खादों का उपलब्ध नहीं होना।

5. किसान प्राय: अपने उत्पाद को बेचने के लिए बड़े निर्यातकों से जुड़े होते हैं जो इनके उत्पाद की खरीद एवं उनके प्रमाणीकरण को लेकर उन्हें परेशान करते हैं जिससे छोटे तथा सीमांत किसान परेशान होकर जैविक खेती से विरक्त हो जाते हैं।

6. जैविक उत्पादों के लिए खरीददारों का अभाव।

7. लोगों के बीच जैविक उत्पादों की जानकारी न होने से इनके उत्पादों को बेचने में बाधा आती है।

8. जैविक उत्पादों की कीमत अधिक होने से इनको केवल संपन्न जनगण ही खरीदने की क्षमता रखते हैं।

4

सिमटते हिमनद बढ़ता जल संकट

डॉ. बिजय कुमार उपाध्याय

प्राय: सुनने में आता है कि तीसरा विश्वयुद्ध पानी के लिए लड़ा जाऐगा। यह कथन या सोच आधारहीन नहीं है। संसार के विभिन्न हिमनदों पर वैज्ञानिकों द्वारा किए गए सर्वेक्षणों तथा अध्ययनों के आधार पर उपर्युक्त कथन की पुष्टि हुई है। इन अध्ययनों से पता चला है कि पूरे विश्व में स्थित अनेक हिमनद (ग्लेशियर) काफी तीव्र गति से पिघल रहे हैं। अफ्रीका के पूर्वी भाग में स्थित किलमंजारों पर्वत पर स्थित हिमनदों के सन् 2015 तक पिघल कर पूरी तरह समाप्त हो जाने की आशंका व्यक्त की गई है। भूवैज्ञानिकों द्वारा किए गए अध्ययनों से पता चला है कि सन् 1912 से सन् 2000 के बीच माउंट किलमंजारों पर स्थित सभी हिमनदों का लगभग 80 प्रतिशत अंश पिघल चुका था। इसी प्रकार सन् 1850 से सन् 2000 के बीच आल्प्स पर्वत श्रृंखला पर स्थित हिमनदों का लगभग 40 प्रतिशत अंश पिघल कर समाप्त हो चुका था। दक्षिणी अमरीकी देश पेरू मे स्थित हिमनद सन् 1963 से सन् 2000 के बीच 155 मीटर प्रति वर्ष की दर से पिघल कर छोटे होते जा रहे थे। अध्ययनों से पता चला है कि आर्कटिक तथा ऐंटार्कटिक की बर्फ चादर भी बहुत तेजी से पिघलती जा रही है। इसके कारण इन सभी हिमनदों से निकलने वाली अधिकांश नदियां सूखने की स्थिति में आ रही हैं। वैज्ञानिकों के मतानुसार हिमनदों के इस प्रकार तेजी से पिघलने का कारण है बढ़ता हुआ भूमंडलीय तापन।

भारत के हिमालय क्षेत्र में स्थित हिमनदों की स्थिति भी लगभग ऐसी ही है। आज से कुछ समय पूर्व संयुक्त राष्ट्र संघ की मौसम समिति द्वारा तैयार किए गए एक प्रतिवेदन में बताया गया है कि बढ़ते भूमंडलीय तापन के कारण सन् 2030 तक हिमालय पर्वत क्षेत्र में मौजूद हिमनदों का लगभग 80 प्रतिशत अंश पिघल कर समाप्त हो जाएगा। इसकी वजह से 2030 ई के बाद भारत की अधिकांश नदियां सूख जाएंगी तथा देश में भीषण जल संकट पैदा हो जाएगा। भारत में वायुमंडलीय ताप में वृद्धि का एक मुख्य कारण उस क्षेत्र में अधिक परिमाण में जीवाश्म ईंधनों (खनिज कोयला एवं खनिज तेल) के जलने से उत्पन्न ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन बताया गया है। उपर्युक्त प्रतिवेदन के तकनीकी सारांश में बताया गया है कि यदि वायुमंडलीय तापन में वृद्धि इसी दर से होती रही तो सन् 2030 तक हिमालय क्षेत्र में मौजूद हिमनदों का क्षेत्रफल वर्तमान लगभग पांच लाख वर्ग किलोमीटर से घट कर सिर्फ एक लाख वर्ग किलोमीटर रह जाएगा।

संयुक्त राष्ट्र संघ की मौसम समिति द्वारा तैयार किए गए उपर्युक्त प्रतिवेदन में स्पष्ट रूप से बताया गया है कि भारत में प्रति व्यक्ति जल की खपत जो आज लगभग 1900 घन मीटर प्रति वर्ष है, सन् 2025 तक घट कर सिर्फ 1000 घन मीटर प्रति वर्ष रह जाएगी। जल की खपत में इस गिरावट के दो प्रमुख कारण बताए गए हैं। पहला कारण है जनसंख्या में वृद्धि तथा दूसरा कारण है हिमनदों के सूखने के कारण अधिकांश नदियों में जल की बहुत अधिक कमी हो जाना।

कुछ भारतीय वैज्ञानिक भी, जो हिमालय क्षेत्र के हिमनदों के अध्ययन में सक्रिय रूप से जुड़े रहे हैं, बताते हैं कि

हिमनदों के ह्रासोन्मुखी क्षेत्र को देखते हुए संभावना है कि अगले लगभग 20 वर्षों के दौरान बर्फ से ढका क्षेत्र बहुत कम रह जाएगा। ऐसे ही वैज्ञानिकों में एक प्रमुख नाम है अनिल कुलकर्णी का जो स्पेस ऐप्लिकेशन सेंटर, अहमदाबाद में तुषार तथा हिमनद परियोजना (स्नो ऐंड ग्लैशियर प्रोजेक्ट) के संयोजक थे। इनके अनुसार यदि वायुमंडलीय ताप में औसत रूप से आधा डिग्री सेल्सियस की भी वृद्धि होती है तो हिमालय क्षेत्र के बहुत से हिमनद ऐसे है जहाँ नई बर्फ का निर्माण ही बंद हो जाएगा।

हिमनदों के क्षेत्रफल में ह्रास के कारण अधिकांश झरनों तथा नदियों की प्रवाह क्रम में परिवर्तन आ जाएगा। इस प्रकार का परिवर्तन होने पर शुरू-शुरू में बर्फ के अधिक मात्रा में पिघलने से जल अधिक मात्रा में प्रवाहित होगा। हमारे देश की कई नदियां अपना मार्ग बदल सकती हैं उसके बाद कुछ दशकों तक धीरे-धीरे प्रवाहित होने वाले जल का परिणाम घटता जाएगा क्योंकि हिमनद क्षेत्र के घटने से कम बर्फ पिघलेगी। इसकी वजह से जल की उपलब्धता घटती जाएगी।

कुछ वैज्ञानिकों ने विचार व्यक्त किया है कि हिमालय क्षेत्र के हिमनदों के पिघलने की दर वस्तुतत: उस दर से बहुत अधिक है जिसका अभी तक वैज्ञानिक लोग अनुमान लगाते है। इस कथन की पुष्टि कुछ साक्ष्यों से होती है। सन् 1950 से 1960 से प्रारंभ होने वाले दशकों में कई देशों द्वारा परमाणु बम के परीक्षण किए गए। इन परीक्षणों से उत्सर्जित विकिरण पूरे संसार में फैल गया। इस विकिरण का कुछ अंश संसार में मौजूद विभिन्न हिमनदों में फँस गया। जिनमें हिमालय क्षेत्र के हिमनद भी शामिल थे। परंतु कुछ समय पूर्व हिमालय क्षेत्र के हिमनदों में वेधन (ड्रिलिंग) से प्राप्त क्रोड की जब जाँच की गई तो उसमें उपर्युक्त परमाणु परीक्षणों से उत्सर्जित विकिरण की फँसी हुई मात्रा उस मात्रा की तुलना में नगण्य थी जो संसार के अन्य हिमनदों में वेधन से प्राप्त क्रोड में पाई गई थी। इस साक्ष्य से यह अनुमान लगाया गया कि हिमालय के हिमनदों में उस बर्फ की अधिकांश मात्रा पिघल कर समाप्त हो गई जिसमें विकिरण का अंश फंसा हुआ था। यदि वैज्ञानिकों का यह तर्क सही है तो अनुमान लगाया जा सकता है कि बहुत निकट भविष्य में ही इस क्षेत्र के अधिकांश हिमनद पिघल कर समाप्त हो जाएंगे। इसके फलस्वरूप गंगा सहित उत्तर भारत की अधिकांश नदियों के सूखने की नौबत आ जाएंगी। इसके कारण इस क्षेत्र में रहने वाले लगभग 50 करोड़ लोगों को जल की कमी के भीषण संकट का सामना करना पड़ेगा।

हमारे देश में पानी की उपलब्धता धीरे-धीरे घटती जा रही है। यहाँ 55 से 60 प्रतिशत लोग भूमिगत जल का उपयोग कर रहे हैं। इसके कारण भूमिगत जल का भंडार शनै:शनै: क्षीण होता जा रहा है। हाल के वर्षों में भूमिगत जल-स्तर काफी तेजी से नीचे की ओर खिसका है। केंद्रीय भूमिगत जल प्राधिकरण द्वारा कराये गये एक अध्ययन से पता चला है कि भारत के 18 राज्यों के 286 जिलों में सन् 1982 से सन् 2002 तक के 20 वर्षों के दौरान भूमिगत जल स्तर में औसत रूप से 4 मीटर से अधिक की गिरावट आ चुकी थी। इस समस्या का प्रमुख कारण है भूमिगत जल का बहुत अधिक दोहन।

पेय जल के अलावा सिंचाई के लिए भी अधिकांश क्षेत्रों में भूमिगत जल का ही उपयोग किया जा रहा है। सर्वेक्षणों से पता चला है कि भूमिगत जल के बहुत अधिक दोहन के कारण पंजाब के कई क्षेत्रों में भूमिगत जल और कुंए सूख गए हैं। उपलब्ध आंकड़ों से पता चला है कि इस राज्य के लगभग 50 प्रतिशत कुए तथा नलकूप सूख चुके हैं। गुजरात तथा तमिलनाडु की स्थिति भी काफी चिंताजनक बताई गई है।

भूमिगत जल स्तर नीचे खिसकने से ने सिर्फ जल की उपलब्धता में कमी आएगी, अपितु इससे अन्य खतरे भी हैं। जल-स्तर नीचे खिसकने के कारण भूगर्भीय निर्वात पैदा हो सकता है जिसकी वजह से भूसतह के फटने या धँसने का खतरा पैदा हो जाता है। यह पाया गया है कि यदि भूमिगत जल स्तर एक मीटर नीचे खिसकता है तो उस स्थान पर एक हजार किलोग्राम प्रति वर्ग मीटर का दाब बढ़ जाता है। इसके कारण भूसतह धंस सकती

है जिसके फलस्वरूप जान माल का काफी अधिक नुकसान हो सकता है।

भूमिगत जल-स्तर के नीचे खिसकने के अलावा भी जल संकट बढ़ाने वाली एक अन्य प्रमुख समस्या है जल को प्रदूषण। जल को प्रदूषित करने में कई प्रकार के पदार्थ अपना योगदान देते हैं। कोल वाशरियों तथा अन्य कई प्रकार के कारखानों से निकलने वाले विभिन्न बहि:स्राव प्राय: किसी नदी अथवा अन्य जल-स्रोत में डाल दिए जाते हैं। इसके कारण जल का बहुत अधिक प्रदूषण हो रहा है। उदाहरणार्थ झारखंड की प्रमुख नदी दामोदर के किनारे अनेक कोल वाशरियां तथा अन्य कई प्रकार के कारखाने स्थित हैं जिनसे निकलने वाले आविषी पदार्थ इस नदी के जल में मिलते रहते हैं। यही कारण है कि दामोदर आज भारत की सर्वाधिक प्रदूषित नदी है। अधिकांश नगर किसी न किसी नदी के किनारे स्थित हैं। इन नगरों के आवासीय क्षेत्र में स्थित घरों से निकलने वाला वाहित मल इन नदियों में ही आकर मिल जाता है जिसके कारण इन नदियों का जल प्रदूषित होता रहता है। एक सर्वेक्षण के अनुसार मुंबई में उत्पन्न गंदगी का सिर्फ 13 प्रतिशत उद्योगों से आता है जबकि शेष 87 प्रतिशत घरेलू गंदगी तथा मल-मूत्र आदि हैं। इसी प्रकार कोलकाता में उत्पन्न गंदगी का 89 प्रतिशत आवासीय घरों से आता है।

भारत की सर्वाधिक पवित्र मानी जाने वाली नदी गंगा आज भयंकर प्रदूषण की चपेट में है। घरेलू वाहित मल के अलावा इसके किनारे पर स्थित अनेक कारखानों से निकलने वाली गंदगी भी इसी पवित्र नदी में मिल रही है। सन् 1985 में गंगा कार्य योजना (ऐक्शन प्लान) की शुरुआत हुई जिसके अंतर्गत गंगा में होने वाले प्रदूषण को नियंत्रित करने की योजना थी। परंतु इस दिशा में जो काम हुआ है उसे नगण्य कहा जा सकता है। अध्ययनों से पता चला है कि कई स्थानों पर गंगा-जल अत्यधिक प्रदूषित हो चुका है। इन स्थानों में शामिल है कन्नौज, कानपुर, इलाहाबाद, वाराणसी, गाजीपुर, बक्सर तथा दक्षिणेश्वर इत्यादि।

इस प्रकार हिमनदों का सिमटना, भूमिगत जल-स्तर का नीचे गिरना तथा बढ़ता जल प्रदूषण ये तीन समस्याएं ऐसी हैं जो भविष्य में भीषण जल संकट उत्पन्न कर सकती हैं। यदि समय रहते इन समस्याओं के समाधान हेतु आवश्यक कदम नहीं उठाए गए तो जल की पूर्ति के दृष्टिकोण से भविष्य बहुत ही अंधकार पूर्ण दिखाई पड़ रहा है।

❑

5

गेहूँ से प्रत्यूर्जता (एलर्जी): सीलिएक रोग

डॉ. नवीन कुमार बौहरा

प्रत्यूर्जता (एलर्जी) से लगभग सभी लोग परिचित हैं। यह प्रत्यूर्जता मिट्टी से, नमी से या किसी खास पदार्थ अथवा दवा के सेवन से हो सकती है। ऐसा ही एक प्रत्यूर्जता रोग है- सीलिएक रोग। इस रोग में रोगी को ग्लूटेन (गेहूं में विद्यमान एक विशेष का प्रोटीन) से एलर्जी होती है। इस रोग से प्रभावित रोगी में ग्लूटेन, आहार के माध्यम से उसके पाचन तंत्र की आंतों को नष्ट कर देता है तथा इस प्रकार आंतों द्वारा पाचन किए गए भोजन का अवशोषण नहीं हो पाता है। इससे रोगी में पौष्टिक तत्वों की कमी हो जाती है। इस रोग के रोगी में उल्टी-दस्त का लगातार बने रहना, पेट फूलना, शरीर निढाल रहना एवं शारिरिक वृद्धि नहीं होना या कम होना जैसे लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं।

वस्तुत: सीलिएक रोग में गेहूँ से प्रत्यूर्जता के कारण उसमें पाए जाने वाले 'ग्लेटेन' प्रोटीन का शरीर में पाचन नहीं हो पाता है और आंत के अंकुर या अंदरूनी परत (विलस) नष्ट होने लगती है। गेहूँ से मुख्य रूप से तीन प्रकार के रोग हो सकते हैं, यथा-गेहूँ से एलर्जी, ग्लूटेन सहन नहीं कर पाना तथा गेहूँ एवं उसके उत्पादों से होने वाली प्रत्यूर्जता।

1. **गेहूँ से प्रत्यूर्जता**- इसमें शरीर, गेहूँ में पाए जाने वाले प्रोटीन एल्बूमिन, ग्लोबुलीन, प्रतिपिंड ग्लीएडिन एवं ग्लूटेन के प्रति प्रतिरक्षा ग्लोबुलिन ई अर्थात् प्रतिपिंड के रूप में प्रतिक्रिया दर्शाता है। इस प्रकार के रोग में पामा। (एक्जिमा), पित्ती (आर्टिकेरिया) पेट में ऐंठन-मरोड़, उबकाई, उल्टी आना, मुंह में छाले, दमा, एस्थमा आदि प्रभाव दिखाई देते हैं।

2. **ग्लेटेन सहन नहीं कर पाना**- इस प्रकार के सीलिएक रोग में रोगी का शरीर ग्लूटेन पदार्थ सहन नहीं कर पाता है। यह रोग शरीर के प्रतिरक्षा तंत्र का आनुवंशिक रोग है, जिसमें ग्लूटेन प्रोटीन, खलनायक की भूमिका निभाता है। इस रोग के रोगी में जब ग्लूटेन प्रोटीन भोजन के माध्यम से शरीर में जाता है तो छोटी आंत की श्लेष्मा झिल्ली के अंकुरों को नष्ट करना शुरू कर देती है। छोटी आंत के ये अकुर भोजन के पोषक तत्वों को अवशोषित कर उन्हें रक्त प्रवाह में भेजने का कार्य करते हैं। भोजन में विटामिन, कैल्सियम, कार्बोहाइड्रेट, वसा एवं अन्य पोषक तत्व होते है। ये पोषक तत्व अंकुरों (विलाई) के क्षतिग्रस्त होने से अवशोषित नहीं हो पाते है तथा रोगी गंभीर कुपोषण का शिकार हो जाता है। इस प्रकार सीलिएक रोग प्रति इम्यूनोग्लोबुलिन 'ए' एवं प्रति इम्यूनोग्लोबुलिन 'जी' एन्टीबॉडीज की ग्लूटेन के प्रति दर्शाई प्रतिक्रिया का परिणाम है। बच्चों में साधारणत: इसका पता जल्दी लग जाता है, परन्तु बड़ों में लक्षण गंभीर नहीं होने से चिकित्सक इसे उत्तेजक आंत्र संलक्षण या क्षोभ्य आंत्र संलक्षण आहार जन्य प्रत्यूर्जता या कुपोषण जैसे रोग मानकर इलाज करते रहते हैं। यूनिवर्सिटी ऑफ मेरीलैंड सेन्टर फॉर सीलिएक रिसर्च, बाल्टीमोर के अनुसार लगभग 135 में से 1 अमेरिकी इस बीमारी से ग्रस्त है। इसी प्रकार इंटरनेशलन ईटिंग डिस-आर्डर क्लिनिक के अनुसार यूरोप में ''सीलिएक रोग'' एक प्रमुख आनुवंशिक बीमारी है। भारत में भी इसके अनेक रोगी लगातार मिल रहे है।

3. **गेहूँ एवं इसके उत्पादों से होने वाली प्रत्यूर्जता**- इसे सामान्यत: गेहूँ असहयता भी कहते हैं। इसमें शरीर का प्रतिरक्षा तंत्र शामिल नहीं होता है। इसके बारे में पर्याप्त जानकारी का अभाव है परन्तु विशेषज्ञों के अनुसार पर्याप्त मात्रा में शरीर में एन्जाइम नहीं बनने से गेहूँ का पाचन नहीं हो पाता है। इस प्रकार सीलिएक रोगी, गेहूँ एवं उसके उत्पादों का पाचन करने में असमर्थ होता है।

रोगी का पता लगाने हेतु जाँच

इस रोग का पता लगाने हेतु चिकित्सक सामान्यत: ग्रहणी की जीवऊति परीक्षा (बायोप्सी) एवं/अथवा ''सीरम एंटी टिश्यू ट्रान्स ग्लूटामिनेस लेवल'' जाँच की सलाह देते हैं। इस प्रकार दोनों परीक्षणों की पुष्टि के पश्चात् ही 'सीलिएक रोग' की पुष्टि की जा सकती है।

उपचार- सीलिएक रोग के उपचार हेतु कोई औषधि नहीं है। ग्लूटेन (गेहूँ) युक्त वस्तुओं का सेवन बंद करना एवं वैकल्पिक आहार का सेवन ही इसका उपचार है। रोगी को कमजोरी से बचाने हेतु विटामिन, प्रोटीन एवं कैल्सियम भी उपयुक्त मात्रा में लेना चाहिए।

क्या खाएं क्या नहीं- सीलिएक रोगी को गेहूँ का आटा, सूजी, रागी, जौ और इनसे बनी वस्तुओं/खाद्य पदार्थों का उपयोग नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार स्नैक्स यथा नुडल्स, पास्ता, ब्रेड, पिज्जा, बर्गर, उपमा, बिस्कुट, भुजिया एवं पके हुए अनाज उत्पाद रोटी, दलिया, हलवा, पूरी, पराठा का सेवन नहीं करना चाहिए। हॉरलिक्स, कॉम्पलान, बूस्ट, बॉर्नविटा, मिल्कशेक, योगर्ट, आइसक्रीम, केक, पेस्ट्री, जलेबी एवं गुलाब जामुन भी वर्जित है।

इसके विपरीत चावल, अरारोट, बाजरा, मक्का, सिंघाडे का आटा, चावल की सेवाइयां, चिवड़ा, कॉर्नफ्लेक्स, चावल के पापड़, इडली, डोसा, साबुदाना, मक्के की रोटी, बाजरे की रोटी, उबले चावल, ताजा जूस, रसगुल्ला, लस्सी, ताजी सब्जियां, ताजे फल आदि खा सकते हैं। सीलिक रोगी हेतु आदर्श खाने का मीनू इस प्रकार हो सकता है:

1. नाश्ता- चाय, दूध, पोहा, साबुदाना, कॉर्नफ्लेक्स
2. लंच- इडली, डोसा, आलू-अरारोट, पराठा, सब्जी, चटनी, फल
3. शाम (चाय के समय)- चाय, मिल्कशेक, जूस, आलू टिक्की, कॉर्न कटलेट
4. डिनर (रात का खाना)- चावल, बाजरे की रोटी, दाल, सब्जी, दही, सलाद, चावल की खीर, गाजर की खीर

इस प्रकार जब अन्न का राजा ''गेहूँ'' जो शरीर को पुष्ट रखता है, और उसे कैल्सियम, लोहा, थिआसिन, थाइमिन, फाइबर प्रदान करता है, वही जहर बन जाए तो रोगी मुश्किल में पड जाता है। सीलिएक रोग वास्तव में खतरनाक है परन्तु खान-पान में परिवर्तन कर एवं वैकल्पिक आहार द्वारा इस रोग पर विजय प्राप्त की जा सकती है। वर्तमान में अनेक कंपनियां ग्लूटेन रहित खाद्य उत्पाद बना रही हैं जिसमें नूडल्स, भटूरा, पापड़ जैसे उत्पाद (ग्लूटेन रहित) भी हैं। आलू-अरारोट चपाती, बेसन चीला जैसे स्वादिष्ट उत्पाद भी सीलिएक रोगी खा सकते हैं।

6

फलोत्पादन बढ़ाने में हार्मोनों की उपयोगिता

डॉ. आर.एस.सेंगर, विवेकानंद प्रताप राव एवं रेशू चौधरी

भारत में विविध किस्म के फल पाए जाते हैं और दुनिया के कुल फल उत्पादन का 10 प्रतिशत हिस्सा भारत के खाते में आता है। भारत में 3.72 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल से 44.04 मिलियन टन फल उत्पादन किया जाता है। वर्तमान समय में कुल उत्पादन के मामले में भारत, चीन के बाद दूसरे स्थान पर है। भारत आम, केला और नींबू का सबसे बड़ा उत्पादक है। दुनिया का 39 प्रतिशत आम और 23 प्रतिशत केला भारत में उत्पादित किया जाता है। अंगूर के मामले में दुनिया में भारत का नाम प्रति इकाई सर्वोच्च उत्पादकता के लिए दर्ज है। यह सर्वमान्य है कि फलीय पौधों की वृद्धि केवल जड़ों के द्वारा अवशोषित पोषक तत्वों के लेने और सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में पत्तियों द्वारा बनाए गए कार्बोहाइड्रेट से ही नहीं होती बल्कि इसमें कुछ विशेष रसायनों का योगदान भी होता है। ये रासायनिक पदार्थ (कार्बनिक पदार्थ) पौधों में सृजन स्थल से उपयोग स्थल तक अंतरित होते रहते हैं और ये पौधों में बहुत ही सूक्ष्म मात्रा में पर्याप्त व सक्रिय रहते हैं एवं पौधों की वृद्धि एवं विकास को नियंत्रित करते हैं। ये पदार्थ वृद्धि नियामक या पादप वृद्धि पदार्थ, पादप वृद्धि नियामक, पादप जैव नियामक (नया नाम) कहलाते हैं। वैज्ञानिकों ने विभिन्न पादप वृद्धि नियामकों को ऑक्सिन, जिब्रेलिन्स, साइटोकाइनिन एब्सिसिक, अम्ल, एथिलीन तथा संदमक (इनहिबिटर्स) में वर्गीकृत किया है।

स्सिमरमैन तथा विलकोसन ने सर्वप्रथम 1935 में इसका प्रयोग किया था। उन्होंने अपने अनुसंधान कार्य के फलस्वरूप बताया कि इन पादप वदृधि पदार्थों को कृत्रिम रूप से तैयार कर पौधों पर प्रयोग किया जाए तो इनके गुणात्मक प्रभाव प्राकृतिक रूप से उत्पन्न हुए पादप वृद्धि नियामकों के समान ही होते हैं और ये पौधों की विभज्योतिकी कोशिकाओं और प्रारूप पत्तियों एवं फूलों में वृद्धि एवं अनेक उपापचयी क्रियाओं को प्रभावित व नियंत्रित करते हैं। ये पौधों की सतह पर आसानी से शोषित कर लिए जाते हैं और ऊतकों द्वारा इनका शीघ्रता से पोषण एवं परिभ्रमण होता है। इस प्रकार पौधों की विभिन्न गतिविधियों में ये सार्थक सिद्ध होते हैं।

विभिन्न वर्गीकरण के अनुसार फलोत्पादन में प्रयोग होने वाले पादप वृद्धि नियामक मुख्यत: ऑक्सिन्स के अंतर्गत नेफथलीन एसिटिक अम्ल (एन.ए.ए.), इन्डोल एसिटिक अम्ल (आई.ए.ए.) ब्युटेरिक अम्ल (आई.बी.ए.), 2, 6 डाईक्लोरोफिनाक्सी एसिटामाइड जिब्रेलिन्स के अंतर्गत जिब्रेलिक अम्ल-3, जिब्रेलिक अम्ल-4, जिब्रेलिक अम्ल-7, साइटोकाइनिनों के अंतर्गत काइनेटिन, बेन्जाइल एडिनीन (बी.ए.), जीएटीन, आइसो पेन्टीनाइल एडिनीन, एथिलिन के अंतर्गत इथ्रेल, इथेफान (क्लोरोइथाइल फास्फोनिम अम्ल) व संदमक इनहिबटर्स के अंतर्गत बेन्जाइक अम्ल, मैलिक अम्ल, सिनामिभ अम्ल, कैफिक अम्ल, पैराकोमरिक अम्ल, क्लोजैनिक अम्ल एवं जुगलोन एवं निरोधक (कृत्रिम संश्लेषित) के अंतर्गत सक्सिनिक अम्ल, इइमेथिल हाइड्रेजाइड (बी. नाइन, एलार, एस.ए.डी. एच.), मैलिक हाइड्रेजाइड, पैक्लोब्यूट्राजॉल (पी.पी.-33, कल्तार, बोनजी), साइकोसिल (सी.सी.सी.), ए.एम. ओ. - 1618 इत्यादि प्रमुख है।

हार्मोनों की प्रयोग विधि

1. लेप विधि: पादप वृद्धि नियामकों को उपयुक्त रूप में बनाने के लिए इनकी निश्चित मात्रा लेनोलिन लेई मिलाई जाती है। इसके लिए लेनोलिन को किसी बर्तन में हल्की आंच (60-70 से.) पर पिघलाते हैं, फिर पिघली हुई लेनोलिन में वृद्धि नियामक चूर्ण को डालकर कांच की छड़ से हिलाते हैं। इस प्रकार से इसी रूप में इनका प्रयोग वानस्पतिक प्रसारण, गूटी तथा कर्तनों के तरीकों में किया जाता है। यह विधि चूर्ण-विधि की अपेक्षा अच्छी एवं सरल है। इस विधि में वृद्धि नियामकों की सांद्रता, घोल विधि की तुलना में तीन से पांच गुना अधिक रखनी पड़ती है। लेई की निश्चित मात्रा कर्तनों के निचले सिरों पर गूटी के वलय के ऊपर भाग पर चाकू या स्पेचुला से लेप दी जाती है।

2. घोल विधि: पादप वृद्धि नियामकों को सर्वप्रथम किसी उचित विलेयक में घोल देते हैं। अम्ल आधारित नियामकों (जैसे ऑक्सिन एवं जिब्रेलिन) को हमेशा क्षार (पोटैशियम हाइड्रॉक्साइड या सोडियम हाइड्रॉक्साइड) या ऐल्कोहॉल तथा क्षारक आधारित नियामकों (जैसे साइटोकाइनिन) को हमेशा अम्ल या ऐल्कोहॉल में घोलना चाहिए। फिर घोल में आवश्यकतानुसार पानी डालकर आयतन पूरा कर लिया जाता है। यदि घोल को कुछ घंटों के लिए साधारण ताप पर रख देने से बर्तन की निचली सतह पर तलछट इकट्ठा हो जाता है, तो इसका तात्पर्य यह है कि वृद्धि नियामक पानी में घुले नहीं है। ऐसे घोल का प्रयोग नहीं करना चाहिए। अच्छी तरह से बने घोल का पेड़ों पर पर्णिल (फालियर) छिड़काव करना चाहिए। द्रवित अवस्था वाले नियामक से कर्तनों को दो विधियों द्वारा उपचारित किया जाता है।

(i) कम अवधि के लिए उपचार: जब पादप नियामकों की सांद्रता अधिक होती है, जैसे 500 पी.पी.एम. से 2000 पी.पी.एम., उस समय कर्तनों के निचले सिरे को केवल इसमें डुबाकर कुछ सेकंड में ही निकाल देते हैं।

(ii) लंबी अवधि के लिए उपचार: इसमें पादप नियामकों की थोड़ी मात्रा अधिक पानी में घुली होती है। जिससे सांद्रता कम होती है जैसे 10 पी.पी.एम., 25 पी.पी.एम. इत्यादि इसमें कर्तनों के नीचे के सिरों को डुबाकर 24 घंटे के लिए छोड़ देते है।

3. चूर्ण (पाउडर) विधि: पादप वृद्धि नियामकों का पाउडर के रूप में प्रयोग अधिकतम कर्तनों (कलम द्वारा प्रवर्धन) को उपचारित करने में किया जाता है। इस विधि में वृद्धि नियामकों को किसी निष्क्रिय वाहक पदार्थ के चूर्ण के साथ मिलाकर प्रयोग में लाते हैं या फिर नियामकों को एकल्कोहॉल में घोलकर निष्क्रिय चूर्ण के साथ मिला देते है। वृद्धि नियामक की सांद्रता कोमल कलमों के प्रवर्धन में 200 से 100 पी.पी.एम. तथा कड़े तने वाले कलमों के लिए 1000 से 5000 पी.पी.एम. प्रयोग में लाई जाती है। कलमों को वृद्धि नियामक एवं चूर्ण के मिश्रण से उपचारित करने के थोड़ी ही देर पहले काटते हैं, इसके बाद कर्तनों के निचले सिरों को लगभग 1-2 सेंमी, लंबाई में गीला करके नियामक पाउडर में डुबोकर घुमा दिया जाता है, जिससे पाउडर कर्तन के निचले सिरे पर चारों तरफ लग जाता है। इसके पश्चात् तैयार किए गए माध्यम में छिद्र बनाकर कतरों को लगा दिया जाता है। यह विधि, घोल विधि के अपेक्षा कुछ कम सफलता देती है।

4. मज्जन (ड्रेचिंग) विधि: इस विधि में तैयार किए हुए वृद्धि नियामक के घोल को पौधों के मुख्य तने के चारों तरफ नाली बनाकर डाल देते हैं। आम में निरंतर फलन के लिए पैक्लोब्यूट्राजॉल (कल्तार) को ट्रंक स्वायल लाइन पोर विधि से दिया जाता है।

फलोत्पादन में पादप हार्मोनों का मुख्य उपयोग

1. प्रवर्धन: विभिन्न प्रकार के फलों का कर्तन, स्टूलिंग, बीज, गूटी एवं उत्तक संवर्धन के द्वारा प्रवर्धित किया जाता है। इनके प्रवर्धन में विभिन्न प्रकार के ऑक्सिन जैसे आई. ए.ए., आई.बी.ए, एन.ए.ए., 2,4-डी, और 2, 4, 5-टी

को घोल चूर्ण के रूप में तथा लेनोलिन लेप के रूप में प्रयोग किया जाता है। महत्वपूर्ण फलों जैसे अमरूद, लीची, आम, नींबू, सेब, नाशपाती, चेरी, अंगूर इत्यादि के प्रवर्धन में इन सभी पादप वृद्धि नियामकों का प्रयोग किया जाता है (सारणी-1)

1.1 कर्तनों में जड़ उत्पादन- पादप वृद्धि नियामकों का प्रयोग मुख्यत: कर्तनों से जड़ उत्पादन के लिए किया जाता है। पौधों के प्रसारण में भी विभिन्न पादप नियामकों का प्रयोग करते हैं। नींबू की खट्टा जाति, फालसा, शहतूत, लीची, अंगूर, पर्णपाती फल में पादप नियामकों का प्रयोग करके अधिक सफलता के साथ कर्तनों में जड़े उत्पन्न की जाती हैं। आई.बी.ए. तथा एन.ए.ए. कर्तनों द्वारा पौध प्रसारण में सामान्य रूप से प्रयोग किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त आई.ए.ए. नेफ्थलीन, एसीटाइमाइड, 2-4 डाईक्लोरोफिनाक्सी एसिटिक अम्ल का भी प्रयोग किया जाता है। कर्तनों द्वारा पौध प्रसारण में पादप नियंत्रक का प्रयोग पाउडर के रूप में, द्रवित रूप में तथा लेई के रूप में किया जाता है। ऑक्सिन का व्यापिक रूप जैसे सेरोडिक्स (ए) तथा सेरेडिक्स (बी) पाउडर के रूप में प्रयोग किया जाता है। कर्तनों के निचले सिरों को पानी में भिगोने के उपरांत ही नियामक को पाउडर के रूप में लगाया जाता है। तत्पश्चात् कर्तने जमीन में बने छिद्र में लगा दी जाती हैं। लेई के रूप में इसका प्रयोग कर्तनों एवं गूटी की वलय पर किया जाता है। चाकू या स्पैचुला से नियामक मिश्रित लेई का कर्तनों के निचले सिरों एवं वलय के ऊपरी भाग पर लेप करना चाहिए।

1.2 गूटी में जड़ उत्पादन- गूटी तैयार करने के लिए पेन्सिल-सी मोटाई वाली स्वस्थ शाखाएं चुननी चाहिए। शाखा पर आँख या कलिका से 1 से.मी. नीचे की ओर शाख का 3 से.मी. लंबा छिलका गोलाई से निकाल देते हैं। छिले हुए भाग पर वृद्धि नियामक जैसे रूटोन्स या सेरेडिक्स आई.बी.ए. और एन.ए.. में से किसी एक का प्रयोग 500 पी.पी.एम. की दर से पानी में घोल बनाकर तथा मांस घास को इस घोल में भिगोकर अथवा लेनोलिन में वृद्धि नियामक का उपरोक्त दर से पेस्ट बनाकर लगाते हैं। ऐसा करने से जड़ों के निकलने की प्रक्रिया तथा बढ़वार अधिक होती है।

1.3 ग्राफ्टिंग पर प्रभाव: मूलवृंत एवं सांकुर शाख के कटे भागों पर आई.बी.ए. (100-1000 पी.पी.एम.) का पेस्ट या घोल के रूप में प्रयोग करने से एधा कैम्बियम की सक्रियता बढ़ जाती है तथा इससे मूलवृंत एवं सांकुर शाख में अच्छा जुड़ाव होता है। पादप नियंत्रक का प्रयोग कलिकायन में भी किया जा सकता है।

1.4 बीज प्रवर्धन: नियामकों के द्वारा बीज उपचारित करने से शीघ्र व अधिक मात्रा में अंकुरण होना तथा बीज प्रसुप्ति का कम होना भी पाया गया है। इसके लिए आई.ए.ए. जिब्रेलिक अम्ल, थायोयूरिया व 2,4-डी इत्यादि के विभिन्न सांद्रता के घोल उपयोगी पाए गए हैं।

1.5 पादप ऊतक संवर्धन: औद्यानिक पौधों में पादप ऊतक संवर्धन द्वारा प्रवर्धन बहुत ही उपयोगी है। इस विधि में पौधों का प्रवर्धन बहुत ही तेजी से होता है तथा पौधे जीवाणु मुक्त होते है। यह विधि वृहत् स्तर पर उपयोग में लाने से सस्ती पड़ती है। इस विधि में तनों तथा जड़ की बढ़वार के लिए पोषक माध्यम में उचित पादप नियामक को मिलाया जाता है। साइटोकाइनिन (बी.ए., काइनेटिन इत्यादि) को ऑक्सिन (आई.ए.ए., आई.बी. ए., एन.ए.ए., 2,4-डी. इत्यादि) के साथ एवं जिब्रेलिन को विभिन्न अनुपात में ऊतक संवर्धन के लिए प्रयोग किया जाता है। कुछ महत्वपूर्ण फल जैसे केला, स्ट्रोबेरी, सेब, आड़ू, नाशपाती इत्यादि में ऊतक संवर्धन विधि नियामकों के प्रयोग के साथ बहुत ही सार्थक सिद्ध हुई है।

2. पुष्पन एवं फलों का आकार: फूलों को नियंत्रित करने एवं फलों का आकार बढ़ाने के लिए पौधों पर पादप नियामकों का प्रयोग किया जाता है। अनन्नास, आम, सेब,

लीची, पपीता इत्यादि में पुष्पन को उत्तेजित करने के लिए विभिन्न नियामकों का प्रयोग किया जाता है (सारणी-1)। अनन्नास में पादप नियंत्रकों के प्रभाव से फलों का आकार बढ़ाने तथा फलों को जल्दी या देर से पकने में भी मदद मिलती है। इसके लिए एन.ए.ए. (5-10 पी.पी. एम.) का घोल, पौधे के मध्य भाग पर डाला जाता है।

3. बीज रहित फल उत्पादन अथवा अनिषेकफलन: पादप नियामक का प्रयोग फलों को बीज रहित बनाने में भी किया जाता है। पौधों की कुछ जातियों में फलों को बीज रहित बनाने से फलों का आकार कम हो जाता है। पादप नियामकों के प्रयोग से सेब, नाशपाती तथा अंजीर के फलों को बीज रहित बनाने में सफलता प्राप्त हुई है। इसके लिए एन.ए.ए., 2,4-डी., 2,4,5-टी., एवं 2,4,5-टी.पी का प्रयोग किया जाता है।

4. फलों एवं फूलों का विरलीकरण: किसी खास मौसम में फलत को कम करने के उद्देश्य से फूलों का विरलीकरण किया जाता है। विरलीकरण का मुख्य लाभ उस मौसम में फलों का आकर एवं ग्रेड बढ़ाने में मिलता है तथा साथ ही पौधे की शक्ति पूर्ण रूप से क्षीण नहीं हो पाती है, जिससे अगले वर्ष भी समान रूप से फल मिलता है। जब पौधों पर फूल पूर्ण मात्रा में हो तो पादप नियंत्रकों का छिड़काव करना चाहिए। (सारणी-1)।

5. प्रसुप्ति का निवारण: फलों के बीजों में सुसुप्तावस्था/प्रसुप्ति के निवारण में वृद्धि नियामकों का महत्वपूर्ण योगदान है। नींबू, चेरी, पपीता, एवोकाडो, सेब, आड़ू, अखरोट इत्यादि के बीजों में जमाव की क्षमता को जिब्रैलिक अम्ल के उपचार से बढ़ाया जा सकता है। बेर तथा अनोना में खुरचे बीच की सुसुप्तावस्था के निवारण में भी जिब्रैलिक अम्ल बहुत ही प्रभावशाली है। बीजों को बोने से पहले उनको जिब्रैलिक अम्ल के घोल में डुबोकर कुछ निश्चित समय के लिए रख दिया जाता है। तत्पश्चात् निकालकर इन बीजों को जमीन में बो दिया जाता है, जिससे इनकी जमाव शक्ति बढ़ जाती है।

6. फल लगने में: पादप नियामकों का प्रभाव फलों के लगने में मदद करता है। एन.ए.ए. आई. बी.ए. एवं डाइक्लोरोफिनोक्सी एसिटिक अम्ल का प्रयोग फलों की संख्या बढ़ाने में प्रभावशाली सिद्ध हुआ है। (सारणी-1)। इस कार्य के लिए पादप नियामक, द्रवित अवस्था में निश्चित 25-50 पी.पी.एम के साथ छिड़के जाते है।

7. फलों को फटने से रोकना: बहुत से फलों में फटने की एक प्रमुख समस्या होती है, जिसके कारण उनका बाजार भाव कम हो जाता है। इसके लिए कुछ फलों जैसे-लीची में फलों को फटने से बचाने के लिए एन. ए.ए. (20 पी.पी.एम.), जी.ए. (40 पी.पी.एम), 2, 4-डी (10 पी.पी.एम.) एवं इथेफोन (10 पी.पी.एम.) का छिड़काव करते है। साथ ही चेरी में फलों को तोड़ने से 30 दिन पूर्व एन.ए.ए. (10 पी.पी.एम.) के घोल का छिड़काव करने से फलों को काफी हद तक फटने से बचाया जा सकता है।

8. फलों का गिरने से रोकना: फलों का तुड़ाई से पहले गिरना एक बहुत बड़ी समस्या है, जिसको कम करने के लिए पादप नियामकों का प्रयोग किया जाता है। सेब में अप्रकेल माह में एन.ए.ए. (10 पी.पी.एम.), 2, 4, 5-टी.पी. (20 पी.पी.एम.) एवं एलार (200 पी.पी.एम.) का छिड़काव करने से फलों के झड़ने की समस्या पर नियंत्रण होता है। नींबू प्रजाति के फलों को गिरने से रोकने के लिए 2, 4-डी (10 पी.पी.एम.) का प्रयोग किया जा सकता है। लीची में फलों को गिरने से बचाने के लिए एन.ए.ए. (20 पी.पी.एम.) एवं 2,4-डी. (10 पी. पी.एम.) का छिड़काव, फल का आकार मटर के दाने के समान होने पर करते हैं। आम में फल को गिरने से बचाने के लिए फल बनने के बाद, 15 दिन के अंतराल पर एन.ए.ए. (30-40 पी.पी.एम.) अथवा 2,4-डी (10 पी.पी.एम.) का छिड़काव करें।

9. वानस्पतिक वृद्धि का नियंत्रण एवं नियमित फलन: वानस्पतिक वृद्धि को रोकने के लिए विभिन्न तरह के नियामकों (वृद्धि मंदकों) जैसे पैक्लोब्यूट्राजॉल (कल्तार), साइकोसिल, एलार, एनसीमिडोल, ए.एम.ओ. 1618 को प्रयोग में लाया जाता है। पौधों में वानस्पतिक वृद्धि का रुकाव, नियमित फलन एवं कृषि क्रियाओं को संपादित करने में सहायक सिद्ध होता है। फल पौधों में आकार को नियंत्रित करना सघन बागवानी के लिए उपयुक्त होता है। उपर्युक्त दिए गए सभी नियामकों में पैक्लोब्यूट्राजॉल आड़ू, नाशपाती, नींबू, सेब, लीची खुबानी, अलूचा एवं आम के पौधों की वृद्धि रोकने के लिए बहुत ही कारगर सिद्ध हुआ है (सारणी-1)। पूर्ण रूप से विकसित आम के पौधों में पेक्लोब्यूट्राजॉल (कल्तार) को मुख्य तने के पास मिट्टी में 5-6 मि. लि. सक्रिय घटक प्रति वृक्ष के हिसाब से मध्य सितंबर माह में डालने से नियमित फलन होता है। सघन बागवनी विधि (3 3 मी.) में पैक्लोब्यूट्राजॉल की मात्रा 1 मि. लि. सक्रिय घटक प्रति वर्ष प्रति वृक्ष के हिसाब से दिया जाता है। इस नियामक को फल तोड़ने के बाद जुलाई माह में प्ररोह की छंटाई के बाद सितंबर में मुख्य तने के पास चारों तरफ नाली बनाकर देते हैं, जिससे प्रत्येक वर्ष आम के पौधों में फलन होता है।

10. खरपतवार नियंत्रण: उद्यानों में खरतपवारों को रोकना एक समस्या है। हाथ से निराई-गुड़ाई में समय लगता है तथा कीमत भी अधिक पड़ती है। अत: पादप नियंत्रकों का प्रयोग खरपतवारों की रोकथाम के लिए करना चाहिए। मुख्यत: आक्सिन वर्ग के नियामक खरपतवार नियंत्रण में उपयोगी पाए गए हैं। ये नियामक पादपों के लिए विष का कार्य करते हैं, कुछ खरपतवार कम सांद्रता के घोल के द्वारा नष्ट हो जाते हैं, एवं कुछ अधिक सांद्रता वाले घोल के प्रभाव से। इसमें से फिनॉक्सी अम्ल, 2, 4-डी, एवं 2,4,5-टी इत्यादि उल्लेखनीय हैं। 2,4 डाइक्लोरो फीनॉक्सी एसीटिक अम्ल की 0.1 प्रतिशत सांद्रता द्रवित अवस्था में छिड़की जाती है, जिसके प्रभाव से चौड़ी पत्तियां वाले खरपतवार मर जाते हैं। यद्यपि घासें इसके लिए प्रतिरोधक होती हैं। इसके अतिरिक्त 2, 4, 5-टी, तथा नाइट्रो-ऑरथो सेकेब्यूरिल फिनोल का प्रयोग कम सांद्रता वाले घोल के रूप में करने से खरपतवार नष्ट किए जा सकते हैं। पादप नियंत्रकों का प्रयोग करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि इनकी सही मात्रा का प्रयोग किया जाए अन्यथा पौधों को नुकसान पहुंच सकता है।

11. फलों को पकाने एवं उचित समय पर तोड़ने में: फलों को पकाने की क्रिया को नियंत्रित करने में पादप नियामकों का प्रयोग फलों की तुड़ाई से पहले या बाद में किया जा सकता है। कुछ फलों में तुड़ाई के समय बाजार में अतिरिक्त उपलब्धता हो जाती है तथा किसी समय कम रहती हैं। अत: ऐसे समय में फलों के पकने का समय कम करना या बढ़ाना आवश्यक हो जाता है। फलों को समान रूप से पकाने तथा उचित रंग लाने के लिए इथेल या इथेफोन का प्रयोग किया जाता है (सारणी-1)। 2,4-डी. (15-20) पी.पी.एम.) वाशिंगटन नेबल औरेंज के फलों को देर से पकाने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। एथिलीन एथिल एक मुख्य पादप वृद्धि नियामक है जिसका प्रयोग विभिन्न फलों में तोड़ने के समय होने वाले प्रभाव को उत्पन्न करने के लिए किया जाता है जैसे-सेब, चेरी, नाशपाती, अखरोट एवं अंगूर।

12. उपज तथा गुणवत्ता को बढ़ाना: नियामकों का प्रयोग फलों की उपज तथा गुणवत्ता को भी बढ़ाता है (सारणी-1)। इसके लिए मुख्यत: एन.ए.ए. (50-100 पी.पी.एम.), जी.ए. (50-100पी.पी.एम.) तथा 2,4-डी. (25-50 पी.पी.एम.) का छिड़काव अनेक फलों में फल बनने के उपरांत अत्यंत ही उपयोगी होता है।

ऊपर दिए गए फलोत्पादन में प्रयुक्त होने वाले पादप वृद्धि नियामकों का संक्षिप्त विवरण सारणी-1 में दिया गया है।

सारणी-1. फलोत्पादन में पादप वृद्धि नियामकों का प्रयोगिक उपयोग

उपयोग	फसल	पादप वृद्धि नियामक	सांद्रता (पी.पी.एम.)	अन्य
कर्तन में जड़ उत्पादन	नींबू, अमरूद, अंगूर लोकाट, इत्यादि	(i) आई.बी.ए. (व्यापारिक नाम: हारमोडीन, सेराडेक्स, हारमेक्स) (ii) एन.ए.ए (व्यापारिक नाम: रूटोन)	500-1000 (0.5-1.0 ग्राम प्रति ली.)	बाजार में आई.बी.ए. तथा एन. ए.ए. अन्य व्यापारिक नाम से भी उपलब्ध हैं।
	करौंदा	आई.बी.ए.	6000	कुहासा घर में कठोर शाखा वाली कलम के लिए
	नाशपाती, कैथ एवं पत्थरनाख	आई.वी.ए.	500-1000	–
गूटी में जड़ उत्पादन	लीची, अमरूद कटहल, लोकाट, आम	आई.बी.ए	500-1000	–
	बेल	आई.बी.ए.	500-1000	–
पुष्पन को उत्तेजित करना	अनन्नास	एन.ए.ए.	5-10	पौधे के ऊपर छिड़काव
		एथिल	200-400	तदेव
	आम	एथिल	200	अफलन वाले वर्ष में नए प्ररोह पर एक सप्ताह के अंतराल पर 5 छिड़काव
		पैक्लोब्यूट्राजॉल (कल्तार)/एलार	250-500	
	सेब	पैक्लोब्यूट्राजॉल (कल्तार)	1 मिली/मी. पौध छाया	मज्जन विधि द्वारा मृदा में दिसंबर माह में प्रयोग करें
	लीची	एन.ए.ए.	500-600	–
	पपीता	जी.ए$_3$	50	मादा पौध संख्या में वृद्धि
फलों का आकार	सेब, नाशपाती प्लम, आड़ू,	जी.ए$_3$	20-30	फूल खिलने के 10-15 दिन बाद छिड़काव

गुणवत्ता बढ़ाने में	सेब	प्रोमेलिन (जी.ए$_3$ बी.ए)	10-25	पहला छिडकाव पूर्ण पुष्पन के तुरंत बाद एवं दूसरा 10 दिन के बाद
पुष्पों का विरलीकरण	आड़ू	3-क्लोरो आइसोप्रोपिल एन.-फेनिलकार्बोनेट	250-350	पूर्ण पुष्पन के समय
	सेब	इथेफान/एथिल	350	तदैव
	अंगूर	सेविन	1000	–
	अमरूद	एन.ए.ए. 2,4-डी.	600-800 250-300	अप्रैल-मई के माह में 10 दिन के अंतर पर तीन बार छिड़काव
फलों के विरलीकरण में	सेब, नाशपाती आड़ू	एन.ए.ए. एवं बी.ए. एन.ए.ए. एवं नेप्टालाम	200-300 300	–
फलों (fruit set) की संख्या बढ़ाने में	आम, सेब, लीची नींबू	एन.ए.ए.-फ्रूटोन एन.ए.ए.	25-50 10-25	–
फलों को गिरने से रोकना	लीची	एन.ए.ए.	20	पहला छिड़काव फल का आकार मटर के आकार का होने पर एवं दूसरा जून में
	नींबू	2,4-डी.	10	तीन छिड़काव अप्रैल, जून तथा सितंबर में (मुख्यत: किन्नो में)
	आम	एन.ए.ए.	40	तीन छिड़काव 15 दिन के अंतर पर फल लगने के बाद
बीज की –प्रसुप्त तोड़ने एवं अंकुरण बढ़ाने में	अंगूर सेब, नाशपती, चेरी, आड़ू अखरोट, नींबू, पपीता इत्यादि	जी.ए$_3$ जी.ए.	5-10 5-100	- बीजों को बोने से पूर्व बने घोल भिगोकर

पौधों के वृद्धि एवं विकास के लिए	बहुत से फलों में	जी.ए$_3$	10-20	–
बौनापन लाने या	आम, लीची, अंगूर, कीवी	साइकोसिल (ccc), मैलिक हाइड्राजाइड (MH)	250-1000	–
वृद्धि को रोकने के लिए	नाशपाती	पैक्लोब्यूट्राजॉल, एलार, साइकोसिल	250-500	–
नियमित फलन में	आम	पैक्लोब्यूट्राजॉल (कल्तार)	5-6 मि.ली. सक्रिय घटक/ विकसित वृक्ष	सघन बागवानी विधि (33 मी.) पैक्लोब्यूट्राजॉल की मात्रा 1 मि.ली. सक्रिय घटक प्रति वर्ष मि.ली. सक्रिय घटक प्रति वर्ष प्रति वृक्ष के हिसाब से दिया जाता है।
फलों को पकाने में	आम, सेब, केला, चीकू, अनन्नास	एथिल/एथेफान	200-500	घोल का फलों पर छिड़काव करके या तोड़ने के बाद कुछ समय के लिए डुबोकर

सेब

नींबू

सेब

अनार

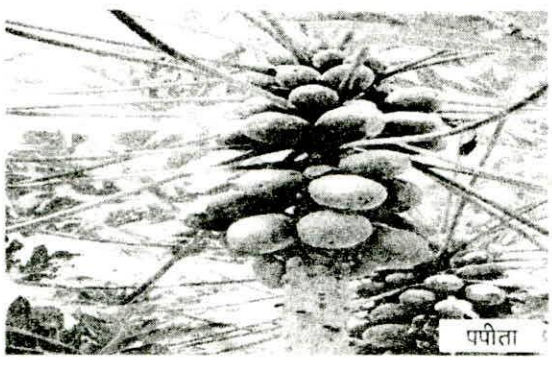
पपीता

अमररूद

लबुगोसा

विविध फल

765 HRD/2013—9A

7

गुणाकर मुलेः हिंदी विज्ञान-लेखन के पुरोधा

जगनारायण

गुणाकर मुले हिंदी विज्ञान-लेखन के प्रखरशिल्पी थे। उनका संपूर्ण जीवन हिंदी विज्ञान लेखन के प्रति समर्पित रहा। उनका यह अभियान जीवन के अंतिम समय तक जारी रहा। विज्ञान लेखन के माध्यम से उन्होंने हिंदी क्षेत्र के जनमानस में विज्ञान-प्रसार का जो काम किया है, आने वाले समय में उसे भुलाया नहीं जा सकेगा। पाँच दशकों के अनवरत हिंदी विज्ञान-लेखन के द्वारा उन्होंने लगभग तीन हजार वैज्ञानिक लेखों के साथ ही चालीस से ज्यादा मौलिक पुस्तकों की रचना का है। उन्होंने अंग्रेजी में भी विज्ञान से संबंधित लगभग ढाई सौ लेख लिखे हैं।

गणित, खगोलिकी, अंतरक्षि यात्रा, भारतीय विज्ञान का इतिहास, पुरातत्व, पुरालिपि शास्त्र, मुद्राशास्त्र एवं भारतीय इतिहास तथा संस्कृति उनकी पुस्तकों के मुख्य विषय है। हिंदी में विज्ञान से संबंधित मौलिक पुस्तकों की रचना के अतिरिक्त वैज्ञानिक दर्शन और इतिहास से संबंधित लगभग एक दर्जन पुस्तकों का आप ने हिंदी में अनुवाद भी किया है।

गुणाकार मुले का जन्म तीन जनवरी 1935 में महाराष्ट्र में अमरावती जिले के बुजरूक गांव के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता रामगुलाम राव मुले एक साधारण किसान थे। गुणाकर मुले की शुरुआती पढ़ाई गाँव के विद्यालय में हुई थी। गाँव के विद्यालय से मराठी माध्यम से आठवीं पास करने के बाद आगे की पढ़ाई के लिए वे वर्धा चले आए। यहीं से उन्होंने हाईस्कूल और इंटर की परिक्षाएं उत्तीर्ण की। इंटर करने के साथ ही उन्होंने संस्कृत, हिंदी और पाली लेकर विशारद की परीक्षा भी पास की। इन विषयों के साथ वर्धा में ही अंग्रेजी की पढ़ाई भी की। उनके मामा स्कूल मास्टर थे, इनके पिता इन्हें भी मास्टर बनाना चाहते थे, लेकिन उच्च शिक्षा के प्रति लगाव के चलते वे स्कूली पढ़ाई के बजाय आगे की पढ़ाई के लिए बौद्ध भिक्षु आनन्द कौसल्यान के साथ प्रयाग आ गए। 1960 में उन्होंने कुछ दिन शोध -कार्य भी किया। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में खगोल विज्ञान का भी अध्ययन किया। उनके विज्ञान-लेखन की शुरुआत भी 1960 में इलाहाबाद से हुई थी।

गुणाकर मुले को हिंदी में विज्ञान-लेखन की प्रेरणा प्रयाग विश्वविद्यालय के गणित शिक्षक डॉ. गोरख प्रसाद से मिली थी। डॉ. प्रसाद स्वनामधन्य प्रख्यात गणितज्ञ आचार्य गणेश प्रसाद के शिष्य थे। डॉ. प्रसाद ने अपने शोधपत्र में प्रसिद्ध फ्रांसीसी, गणितज्ञ 'ली बेग' की एक गलती पकड़ ली थी, जिसे ली बेग ने स्वीकार भी किया था।

स्वतंत्र लेखन ही उनके आय का एकमात्र साधन था, आकाश वृत्ति के सदृश यह पेशा वैसे ही था कि जैसे वर्षा हुई तो अच्छी फसल, अन्यथा सूखे की फाकाकशी। लेकिन किसी भी हालत में उन्होंने अपने स्वाभिमान को मरने नहीं दिया, किसी के आगे कभी हाथ नहीं फैलाया। मुले जी लेखन कार्य करते रहे।

आम आदमी में विज्ञान-प्रचार के लिए समर्पित गुणाकर जी ने आकाशवाणी और दूरदर्शन के लिए भी अनेक वर्षों तक विज्ञापन कार्यक्रम निर्माण में पूरा सहयोग किया था।

765 HRD/2013—9B

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद (एन. सी.ई.आर.टी.) और नेशनल बुक ट्रस्ट (एन.बी.टी.) जैसी संस्थाओं ने उन्हें पुस्तक चयन और संपादन कार्य में सक्रिय हिस्सेदारी की जिम्मेदारी सौंपी। वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सी.एस.आई.आर.) नई दिल्ली और भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् (आई. सी.एच.आर.) जैसी संस्थाओं ने भी उनसे किताबें लिखवाईं।

मुले जी की मातृभाषा मराठी थी उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा मराठी माध्यम से ही पाई थी। उन्होंने हिंदी का व्यवस्थित अध्ययन नहीं किया था, लेकिन हिंदी लेखन के लिए कठोर परिश्रमपूर्वक व्यापक अभ्यास किया। उनके परिश्रम और अभ्यास का ही परिणाम है कि आज उनकी हिंदी विज्ञान-लेखन की शैली आधुनिक हिंदी विज्ञान-लेखकों के लिए अनुकरणीय होकर मार्गदर्शक का काम कर रही है। उनका मानना था कि हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाएं विज्ञान के किसी भी विषय के वहन और संप्रेषण में समर्थ हैं। उनकी दृढ़ मान्यता थी कि ''आपेक्षिकता और क्वांटम सिद्धांत की मूल संकल्पना को अंग्रेजी की बजाए हिंदी में समझना ज्यादा आसान है।''

मुले जी के विज्ञान-लेखन की जिस तकनीकी विशेषता ने उन्हें अन्य हिंदी विज्ञान-लेखकों की तुलना में विशेष ऊंचाई स्थान दिया है उनमे से कुछ का विवरण इस प्रकार है।

(1) विज्ञान की विकास-परंपरा की सम्यक् जानकारी

गुणाकर जी किसी विषय-वस्तु पर अपने लेखन से पूर्व इस बात का अच्छी तरह आंकलन कर लेते थे कि इस विषय में भारत और भारत के बाहर विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास किस क्रम में हुआ है, तथा इस विषय के क्षेत्र में दुनिया के विभिन्न देशों में कितनी जानकारी का आदान-प्रदान हुआ है। लेखन से पूर्व वे इस तथ्य की स्पष्ट एवं सुनिश्चित जानकारी एकत्र कर लेते थे। यही कारण था कि वे पूर्वाग्रह के थोथे स्वदेशाभिमान से ग्रस्त होकर कुछ भी नहीं लिखते थे, बल्कि एक निष्पक्ष समालोचक की तरह वास्तविकता की प्रस्तुति से जरा भी नहीं चूकते थे। अपने इस कार्य में किसी तरह का भी दबाव बर्दाश्त नहीं करते थे।

(2) प्रामाणिकता और सही परिणाम

लिखना शुरू करने से पहले ही गुणाकार जी विषय-वस्तु पर अच्छी तरह सोच-समझ कर अपनी अवधारणा बनाकर ही लिखना शुरू करते थे, वे विषय से संबंधित समस्त सूचनाओं की प्रमाणिकता की जाँच-पड़ताल लेखन से पूर्व और शंका होने पर लेखन के बीच भी कर लेते थे। इस का परिणाम यह रहा कि उनके लेखन पर उंगली उठाने की किसी की हिम्मत नहीं पड़ती थी। उनकी यही विशेषता उन्हें एक श्रेष्ठ और प्रामाणिक लेखक की श्रेणी में खड़ा करती है।

विभिन्न विषयों का व्यापक स्वाध्याय

मुले जी की जिज्ञासा और अध्ययन की सीमा अत्यंत व्यापक थी। वे भारतीय धर्म, दर्शन, अध्यात्म, लिपिशास्त्र और पुरातत्व से लेकर आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की अनेक शाखाओं में गहरी पैठ रखते थे। गणित और खगोलिकी का उच्च अध्ययन सभी विषयों में समायोजन बना देता था। अच्छी याद्दाश्त होने के बाद भी महत्वपूर्ण लेख लिखते समय में मूलस्रोतों की जांच पड़ताल में किसी प्रकार की कोताही नहीं बरतते थे। हिंदी, मराठी और अंग्रेजी के अलावा संस्कृत और पाली से भी वे अच्छी तरह से परिचित थे। बार-बार पुस्तकालय के शरण में न जाना पड़े इसके लिए उन्होंने अपने घर पर ही पुस्तकों का विशाल संग्रहालय बना रखा था। अपने इस विशाल संग्रहालय के लिए पुस्तकें उन्होंने अपनी कमाई से इकट्ठी की थीं। त्याग-तपस्या से निर्मित इस संग्रह में उन्होंने लगभग साठ हजार के करीब पुस्तकें एकत्र की थीं। इनमें पत्रिकाओं की जिल्द में बंधी फाइले भी थीं। इतने बड़ें संग्रह के बावजूद जरूरत पड़ने पर वे बाहरी पुस्तकालयों में जाने में जरा भी परहेज नहीं करते थे।

विज्ञान की सुबोधनीयता की सही पकड़

विज्ञान के किसी भी क्षेत्र में किसी भी नियम या तथ्य को आम पाठक के लिए सुग्राह्य बना कर सामने लाना और पाठक की जिज्ञासा को बढ़ा देना अच्छे विज्ञान-संचारण का महत्वपूर्ण पक्ष है। कठिन से भी कठिन विषय को भी हौवा की बजाए आसान बनाकर प्रस्तुत करने में वे अतिसिद्ध थे। वे अक्सर कहा करते थे कि विज्ञान कोई हौवा नहीं है, विज्ञान-लेखकों को और विज्ञान-शिक्षकों ने ही इसे हौवा बना दिया है। आम पाठकों में इतनी समझ होती है कि विज्ञान की बुनियादी बातों को मोटे तौर पर समझ सकें। तथ्यों को रोचकता की भारी चाशनी में लपेट कर परोसने के वे कत्तई खिलाफ थे।

सीधी शैली और आसान भाषा

गुणाकर मुले के वैज्ञानिक लेखन की शैली आसान और सीधी होती थी। वे बिना इधर-उधर की बातों को जोड़े वैज्ञानिक तथ्यों को बड़ी साफगोई से लिख जाते थे। उनका लेखन हमेशा ही पाठक को अपने साथ लेकर आगे बढ़ता नजर आता है। इसके बावजूद सपाट-बयानी से वे हमेशा बचकर ही चलते थे।

परिश्रम की पराकाष्ठा

एक-एक लेख के लिए वे जितना परिश्रम करते थे उतना शायद ही कोई हिंदी विज्ञान-लेखक आज करता है। एक बार एक संपादक ने उन्हें कुत्ते के काटने से होने वाली जलभीति (हाइड्रोफोबिया) की रोकथाम और उपचार की खोज के आविष्कारक 'लुई पाश्चर' (1822-95) के जीवन और शोध प्रक्रिया के सौ वर्ष होने पर 1985 में एक लेख लिखने को कहा साथ ही पूछा कि चरक संहिता में रैबीज के बारे में क्या तथ्य उपलब्ध हैं? यह भी अनुरोध किया 'भवभूति' के संस्कृत नाटक उत्तर रामचरित में कुत्ते के विष अलर्क का जो जिक्र आया है उसे भी देख लें। उन्होंने लौटती डाक से उस संपादक को सूचित किया कि चरक संहिता में इस विषय पर बहुत महत्व जानकारी उपलब्ध हैं, लेकिन उत्तर रामचरित में मुझे इस प्रकार का कोई संदर्भ नहीं मिला। इसी बीच उक्त संपादक ने भवभूति का वह श्लोक खोज लिया था, और उसकी सूचना देने के लिए पत्र लिखने बैठा ही था टेलिप्रिंटर पर मुले जी का संदेश आया- 'उत्तर रामचरित में वह संदर्भ मिल गया, लेख आपके दिल्ली दफ्तर में अमुक दिन पहुंच जाएगा। ऐसे जिम्मेदार थे गुणाकर मुले। उनकी इन्ही विशेषताओं ने संपादकों को उनका कायल बना दिया था।

वैज्ञानिक विषयों पर लिखे गए उनके लेख मात्र विज्ञान से संबंधित रूखे तथ्यों पर ही आधारित नहीं होते थे। बल्कि उनमें सांस्कृतिक और ऐतिहासिक तथ्यों का भी समावेश होता था। उनकी लेखन की इस शैली के चलते विज्ञान में रुचि न रखने वाले लोग जहां उनके द्वारा रचित विज्ञान-संबंधी लेखों को बिना ऊब के रुचि लेकर पढ़ते थे, वहीं विशुद्ध विज्ञान में रुचि रखने वालों को विषय वस्तु के सांस्कृतिक महत्व और उसकी पृष्ठभूमि की भी जानकारी मिल जाती थी।

यहां 'आविष्कार' नामक विज्ञान-पत्रिका में छपे कुंभ पर्व से संबंधित उनके एक लेख के कुछ अंश की चर्चा उपयुक्त होगी। ''कुंभ पर्व भारत का सबसे बड़ा धार्मिक मेला है। संसार के शायद ही किसी अन्य आयोजन में इतने विशाल स्तर पर लोग सम्मिलित होते हों। कुंभ पर्व हर बारह वर्ष के अंतराल पर देश के चार तीर्थ स्थानों पर आयोजित होता है। ये चार तीर्थ क्षेत्र हैं- हरिद्वार, प्रयाग (इलाहाबद), नासिक और उज्जैन। इस साल कुंभ पर्व का आयोजन हरिद्वार में हो रहा है। कुंभ का यह महापर्व समुद्र मंथन की पौराणिक कथा पर आधारित है। मगर देश के चार स्थानों में कुंभपर्व का आयोजन विशिष्ट ग्रह योग के अनुसार होता है, इस प्रकार है-

- बृहस्पति के कुंभ राशि में और सूर्य के मेष राशि में होने पर हरिद्वार में कुंभ होता है।
- बृहस्पति के वृषभ राशि में और सूर्य के मकर राशि में प्रयाग में कुंभ होता है।

- बृहस्पति के सिंह राशि में और सूर्य के मेष राशि में होने पर उज्जैन में कुंभ होता है।

पद्मिनीनायके मेषे कुंभराशिगते गुरौ।

गंगद्वारे भवेद् योग: कुम्भनामा तदोत्तम:।।

अर्थात् ''जब सूर्य मेष राशि में और बृहस्पति कुंभ राशि में पहुंचते हैं तब हरिद्वार में कुंभ नाम का उत्तम योग होता है।''

इसी प्रकार सन् 2010 में मानव जीनोम अनुक्रमण के उद्घाटन के अवसर पर आविष्कार के अगस्त 2010 अंक में मुले जी का ''खुल गई मानव जीनोम का कुंडली'' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ था। इस लेख में उन्होंने डी. एन.ए. की संरचना की खोज से शुरू कर आण्विक जीव विज्ञान के विकासक्रम का पूरा लेखा-जोखा प्रस्तुत किया था। लेख के साथ में बॉक्स में आनुंवशिकी की संपूर्ण विकास-यात्रा को शब्दों द्वारा दर्शाया गया था। इसके साथ ही कुंडलिनी के विविध आयामों का अर्थपूर्ण और विचारोत्तेजक विश्लेषण प्रस्तुत किया था। वास्तव में गुणाकर जी सूक्ष्म से सूक्ष्म विज्ञान विषय की व्याख्या का विस्तृत दिग्दर्शन प्रस्तुत करने में अति सिद्ध थे।

गुणाकर जी बचपन से ही प्रख्यात वैज्ञानिक, सापेक्षवाद के प्रतिपादक नोबेल पुरस्कार से सम्मानित अल्बर्ट आइन्स्टाइन से प्रभावित थे। आइन्स्टाइन के बारे में पहली बार उन्होंने तब जाना तब चौदह वर्ष की आयु में गांव छोड़कर वर्धा आए। यहाँ उन्होंने हिंदी साहित्य सम्मेलन से प्रकाशित डॉ. अवध उपाध्याय की 'सापेक्षवाद' पढ़ी। उस समय उन्हें अंग्रेजी तो बिल्कुल ही नहीं आती थी, हिंदी बहुत थोड़ी आती थी। तब उन्होंने निश्चय किया कि वे आइन्स्टाइन पर एक पुस्तक लिखेंगे।

उनकी यह इच्छा 2009 में तब जाकर पूरी हुई जब ''अल्बर्ट आइन्स्टीन'' शीर्षक से उनकी 473 पृष्ठ की एक पुस्तक भारत सरकार के प्रकाशन विभाग ने छापी। आइन्स्टाइन के आपेक्षिकता के सिद्धांत के विषय में विश्वव्यापी चर्चा रही है कि इस सिद्धांत को केवल दो ही व्यक्ति समझाते थे, एक स्वयं आइंस्टाइन और दूसरे उनके समसामयिक वैज्ञानिक डॉ. 'एडिगटन'। लेकिन मुले जी ने सापेक्षिकता पर किताब लिखकर यह प्रमाणित कर दिया कि इन दो व्यक्तियों के अलावा सापेक्षिकता के सिद्धांत से वे भी पूर्णत: सुविज्ञ हैं।

गुणाकर जी आजादी के बाद उभरे देशी बुद्जिवियों की उस पीढ़ी के प्रतिनिधि थे जिसमें नव स्वतंत्र भारत में जागरूक पीढ़ी तैयार करने का जज़्बा कूट-कूट कर भरा हुआ था। ''हिंदी में विज्ञान लेखन की दशा पर उनका कहना था हिंदी के साहित्यकार व आलोचक वैज्ञानिक साहित्य की उपेक्षा करके हिंदी का बहुत बड़ा नुकसान कर रहे हैं। हिंदी में विज्ञान के पाठकों की संख्या कथा और कविता के पाठकों से बहुत ज्यादा है। मेरा यह प्रयास रहा है कि सरल भाषा में नये-नये विषयों पर लिखूं, उन विषयों पर जिन पर पहले नहीं लिखा गया हो''।

हिंदी विज्ञान-लेखन के इस महान लेखक का निधन 16 अक्टूबर 2009 को दिल्ली में उनके पांडव नगर स्थित आवास पर 74 वर्ष की उम्र में हो गया। उनके निधन से हम लोगों के बीच हिंदी का एक महान सेवक उठ गया। वे जीवन के अंतिम समय तक विज्ञान लेखन में लगे रहे। लगभग तीन हजार लेख और पैंतालिस पुस्तकों के रचनाकार गुणाकर मुले की पुस्तकों का विवरण इस प्रकार है-

(1) संसार के महान गणितज्ञ (2) आकाश दर्शन (3) भारतीय तिथियों की कहानी (4) भारतीय विज्ञान की कहानी (5) भारतीय अंक पद्धति की कहानी (6) प्राचीन भारत के महान वैज्ञानिक (7) आधुनिक भारत के महान वैज्ञानिक (8) ज्यामिति की कहानी (9) नक्षत्र लोक (10) अंतरिक्ष यात्रा (11) महान वैज्ञानिक (12) गणित की पहेलियां (13) सौर मंडल (14) सूर्य (15) भास्कराचार्य (16) आर्यभट्ट (17) स्वयंभू महापंडित (18) राहुल चिंतन (19) ब्रह्मांड (20) भारत : इतिहास (21) अक्षर कथा (22) महाराष्ट्र के दुर्ग (23) महापंडित राहुल सांकृत्यायन (24) कैसी होगी 21 वीं सदी? (25) आपेक्षिकता का सिद्धांत क्या है? (26) अंकों की कहानी (27) अक्षरों की कहानी (28) केपलर (29) पास्कल (30) आर्किमिडीज (31) मेंडलीफ (32) तारों भरा आकाश (33) भारतीय सिक्कों का इतिहास (34) एशिया के महान वैज्ञानिक (35) महान गणितज्ञ ज्योतिषी आर्यभट्ट (36) हमारी राष्ट्रीय प्रयोशालाएं (37) विज्ञान (38) महान विज्ञान (39) विज्ञान का इतिहास (40) इतिहास पुरातत्व (41) खगोल विज्ञान

निश्चय ही गुणाकर जी हिंदी विज्ञान-लेखकों में अब तक के सबसे चर्चित लेखक हैं। उनकी कर्मठता, और उनके जीवन और विज्ञान-लेखन के प्रति समर्पण ने उन्हें सर्वश्रेष्ठ हिंदी विज्ञान-लेखक का खिताब दिलाया। शुरुआती दौर में उन्होंने बच्चों के लिए विज्ञान संबंधी लेख और पुस्तकें लिखीं जो आगे चलकर उच्चस्तरीय विज्ञान-लेखन में तब्दील हो गईं। उन्होंने अपनी पूरी जिंदगी विज्ञान-लेखन को समर्पित कर दी थी। उन्होंने अपनी आजीविका का साधन भी विज्ञान लेखन को ही बनाया। निस्संदेह उनकी बहुमूल्य कृतियां आने वाली पीढ़ी का लंबे समय तक मार्ग दर्शन करती रहेगी।

❑

8

जानलेवा विषाणुओं की खोज और उनसे मुक्ति के प्रयास

डॉ. दिलीप कुमार

एड्स और बच्चेदानी के कैंसर-जैसी जानलेवा बीमारियों के नाम से ही तन-मन में झुरझुरी सी पैदा होने लगती है। इन दोनों ही बीमारियों से पूरी दुनिया में हर साल इन्सानी जिन्दगियों का बेहद नुकसान हो रहा है। ये दोनों ही रोग संक्रामक विषाणुओं के द्वारा उत्पन्न होते हैं। ये प्रोटीन के खोल (परत) वाले न्यूक्लिक अम्ल के विषाणु हैं। ये इतने सूक्ष्म होते हैं कि इन्हें शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शियों से भी नहीं देखा जा सकता है।

एड्स

लगभग तीन दशक पूर्व अफ्रीका में पाए जाने वाले हरे बन्दरों से इन्सानों में संक्रमित एड्स के विषाणुओं ने आज विकासशील एवं पर्यटन प्रमुख देशों में तबाही-सी मचा रखी है। हमारे देश के पिछड़े और ग्रामीण इलाकों से महानगरों में रोजगार की तलाश में जाने वाले लोगों के माध्यम से यह भयावह रोग अब गांव की भोली-भाली जनता में भी फैलता जा रहा है। यद्यपि विकसित देशों ने इसके इलाज की कई महंगी दवाएं मुहैया कराई हैं। लेकिन ये मंहगी दवाएं गरीब मुल्क के नागरिकों की खरीद हैसियत में नहीं आ पातीं, जिसके चलते एशिया और अफ्रीका के तमाम गरीब लोगों के लोग इस भयावह बीमारी से घुट-घुट कर बेमौत मर रहे हैं।

1981 से आयुर्विज्ञान के क्षेत्र में 'एक्वायर्ड इम्यूनों डेफिशिएंसी सिण्ड्रोम' या 'एड्स' की भयावहता की चर्चा के साथ ही दुनियाभर के डाक्टरों और चिकित्सा वैज्ञानिकों का ध्यान इसकी ओर खिंचता चला गया और वैज्ञानिक लगातार इसके कारकों की तलाश में लग गए। जानलेवा एड्स के कारकों के तलाश के इसी क्रम में पेरिस के दो अलग-अलग संस्थानों से संबद्ध विषाणु वैज्ञानिकों ने इसके निवारण के प्रथम चरण में इस जानलेवा बीमारी के खतरनाक विषाणुओं की खोज का काम शुरू किया।

इस जानलेवा एड्स निवारण अभियान के प्रथम चरण में पेरिस स्थित पाश्चर इंस्टीट्यूट के विषाणुविज्ञान विभाग के फ्रेंक्वाइस बेरे सिनोयूसी और एड्स अनुसंधान एवं निवारण के पेरिस के वैश्विक प्रतिष्ठान के लुक मोर्टेग्निपर ने एड्स से ग्रसित शुरुआती दौर की सूजी हुई 'लसिका ग्रंथियों' को एड्सग्रस्त मरीजों के शरीर से निकालकर व्यापक रूप से संवर्धन (कल्चर) किया। इसके साथ ही एन्जाइम रिवर्स ट्रांसस्क्रिप्टेज की गतिशीलता देखी। यह गतिशीलता 'रेट्रोवायरस' की प्रतिलिपि बनने का स्पष्ट संकेत थी। यहां सबसे महत्वपूर्ण जानने लायक बात यह है कि रेट्रोवायरस-आर.एन.ए. श्रेणी के सूक्ष्म जीवाणुओं का एक ऐसा समूह होता है जो परपोषी कोशिका में प्रतिलिपि बनाने के लिए अपने जीनोम की एक प्रति प्रविष्ट करा देता है। शोधरत इन वैज्ञानिकों ने अपनी खोज के दौरान इस प्रकार से संक्रमित कोशिकाओं से रेट्रोवायरस कणों को अलग होते हुए स्पष्ट रूप से देखा। अलग हुए इन सूक्ष्माणु कणों ने बीमार और सामान्य दोनों ही श्रेणी के लसिका में पाई जाने वाली छोटी रक्त कोशिकाओं (लिम्फोसाइटों) को अपने संक्रमण से मार कर खत्म कर दिया और प्रभावित मरीजों की रोग-निरोधक कारकों (एंटीबॉडी) से अभिक्रिया कर ली। यहां एक आश्चर्यजनक परिणाम यह देखने में आया कि कैंसर पैदा करने वाले रेट्रोवायरस से अलग तरह की स्थिति सामने आई और इसके प्रभाव के कारण बड़ी संख्या में कोशिका निर्माण नहीं हो पाया। इस प्रकार नए तरह के अप्रत्याशित परिणाम को देखकर वैज्ञानिकों ने इन अतिसूक्ष्म जीवाणुओं का अलग नामकरण 'ह्यूमन इम्यूनो डेफिशिएंसी वायरस' (एच.आई.वी.) किया।

सन् 1884 तक बेरेसिनौयूसी और मोण्टेग्नियर ने यौन रोगों से ग्रस्त व्यक्तियों, हिमोफीलिया के रोगियों, रोगी मां से संक्रमित बच्चों तथा रक्ताधान लेने वाले व्यक्तियों से कई नए मानवीय रेट्रोवायरस संकलित कर लिए। इन वैज्ञानिकों ने इस प्रकार से संकलित रेट्रोवायरस का 'लेंटीवायरस' नामकरण किया। वास्तव में लेंटीवायरस- रेट्रोवायरस का ऐसा समूह है जो संक्रमण के बाद रोग के अभिलक्षण को रोक देता है, जिसके कारण ये बहुत देर से सामने आते हैं।

लेंटीवायरस के क्रिया-कलाप और पहचान के बाद इस क्षेत्र में काम करने वाले अन्य कई वैज्ञानिक दलों ने इस खोज को अपनी प्रयोगशालाओं में ले जाकर दुहरा कर अच्छी तरह सुनिश्चित कर लिया कि एच.आई.वी. या एक्वायर्ड इम्यूनो डेफिशिएंसी सिंड्रोम ही एड्स के लिए जिम्मेदार सूक्ष्म विषाणु है।

इन वैज्ञानिकों ने अपने शोध को आगे जारी रखते हुए एच.आई.वी. के प्रतिलिपिकरण की क्रिया के महत्वपूर्ण क्रमों को भी व्याख्यापित करते हुए इन कड़ियों को क्रमबद्ध किया, जिनसे यह सूक्ष्म विषाणु परपोषी कोशिकाओं के साथ अन्योन्य क्रिया का संचालन करता है।

एड्स के संबंध में इस शोध प्रक्रिया की अनिवार्यता के चलते आगे चलकर एच.आई.वी. से संक्रमित रोगियों की पहचान कर उनके इलाज की संभावना पैदा हुई जिससे इस रोग के महामारी के रूप में फैलने के भय पर रोक लगी। इसके साथ ही इस जानलेवा विषाणु की पहचान और उसके क्रिया-कलाप के निर्धारण से कई एड्सरोधी दवाओं के निर्माण और विकास की अभूतपूर्व प्रक्रिया की शुरुआत हो सकी। इन खोजों के चलते इस भयावह रोग के विषय में लोगों को ढेरों जानकारी उपलब्ध हुई, जिससे रोग के फैलने पर रोक लगी और रोगियों की जीवन में आशा का संचार हुआ।

लेंटीवायरस श्रेणी के इस खतरनाक विषाणु की पहचान और इनके क्रिया-कलापों को खोजकर इन दोनों वैज्ञानिकों ने मानव जाति पर एड्स के जानलेवा हमले से बचाव का जो रास्ता सामने लाया है, उससे मनुष्य जाति को बड़ी राहत तो मिली ही है और आगे इस रोग के बचाव और निराकरण की पूरी संभावना भी बनी है। इन दोनों वैज्ञानिकों की इस महान् खोज को ध्यान में रखकर इन्हें 2008 का आयुर्विज्ञान का सर्वोच्च नोबेल पुरस्कार प्रदान कर समानित किया गया।

गर्भाशय का कैंसर

महिलाओं की बच्चेदानी या गर्भाशय में होने वाला कैंसर का पूरी दुनिया में महिलाओं में होने वाले कैंसर में दूसरा स्थान है। यह विकासशील देशों की महिला कैंसर मृत्यु का सबसे बड़ा कारण है। दुनिया के पैमाने पर हर साल इस रोग से पीड़ित 5,00,000 महिलाओं का इलाज किया जाता है। इस रोग से प्रतिवर्ष मरने वाली महिलाओं की संख्या 2,80,000 के आस-पास होती है। हमारे देश में गर्भाशय के कैंसर से मरने वाली महिलाओं की संख्या सबसे ज्यादा है। इसके बाद महिलाओं की सबसे ज्यादा मौतें स्तन कैंसर से होती है। विशेषज्ञों में एक लंबी अवधि तक यह भ्रम रहा कि गर्भाशय के कैंसर का कारण 'हर्वीज सिम्लेक्स' नामक विषाणु है। यह विषाणु इन्सानों में अनेक तरह के विषाणुवीय संक्रमण के लिए आज भी जिम्मेदार माना जाता है।

वर्ष 1970 के दशक में जर्मनी के हाइडलवर्ग स्थित जर्मन कैंसर अनुसंधान केंद्र के वरिष्ठ वैज्ञानिक 'हरेल्ड जूर हौसेन' ने विचार व्यक्त किया कि इस खतरनाक रोग की जड़ में एक साधारण सा विषाणु ''ह्यूमन पेपिलोमा वायरस'' (एच.पी.वी.) हो सकता है जिसके संबंध में

स्पष्ट रूप से प्रमाणित था कि यह मनुष्य की चमड़ी तथा लसिका झिल्ली को संदूषित करता है। उस समय हेरल्ड जूर हौसेन की सोच को इस क्षेत्र में काम कर रहे वैज्ञानिकों की ओर से कोई महत्व नहीं दिया गया। उस समय आम वैज्ञानिकों की राय थी कि स्त्रियों की बच्चेदानी के कैंसर के लिए हर्विज सिम्लेक्स विषाणु ही जिम्मेदार है जिसके चलते उस समय हौसेन की सोच पर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया।

अपने निश्चय में दृढ़ हौसेन ने विश्वभर के वैज्ञानिकों की उपेक्षा के बावजूद अपने विश्वास को सत्य मानकर शोध जारी रखा और परिकल्पना की कि यदि ट्यूमर के लिए जिम्मेदार विषाणु निश्चित रूप से उपस्थित होंगे जो ऐसी स्थिति में उनके जीनोम में भी इस विषाणु का डी.एन.ए. अवश्य होना चाहिए। यहाँ डॉ. हौसेन की सोच थी कि यदि विषाणुओं में ऐसा है तो कोशिकाओं की संख्या बढ़ा देने वाले एच.पी.वी. जीनों के ऐसे विषाणुयुक्त डी.एन.ए. ट्यूमर वाली कोशिकाओं का पता लगाकर उसे पहचाना जा सकता है। अपने अनुमान को विज्ञान की कसौटी पर प्रमाणित करने के लिए हौसेन ने अपना शोध और प्रयोग मजबूती से जारी रखा और लगभग दस वर्षों के अनवरत शोध के बाद वे इस सत्य को सिद्ध करने में सफल हुए। उन्होंने अपने सहयोगियों के साथ मिलकर महिला यौनांगों के मस्सों में नये विषाणुओं को खोज लिया। उनकी इस खोज ने 1980 में इस महामारी के लिए एच.पी.वी. विषाणुओं के दो नये उप प्रकारों को चिह्नित किया जिन्हे एच.पी.वी. 16 और एच.पी.वी. 18 नाम दिया गया। दस वर्ष के शोध से प्राप्त विवरण से बच्चेदानी में शुरू होने वाले कैंसर के लिए जिम्मेदार विषाणुओं की बात बिल्कुल साफ हो गई। हौसेन की इस घोषणा के बाद दुनियाभर के वैज्ञानिकों ने बच्चेदानी के कैंसरग्रस्त कोशिकाओं की बायप्सी के 70 प्रतिशत मामलों में 70 प्रतिशत एच.पी. वी. 16 और 18 को जिम्मेदार पाया।

इस प्रकार हेराल्ड जूर हौसेन के द्वारा खोजे गए एच. पी.वी. को पेपीलोमा विषाणु द्वारा गर्भाशय के कैंसर पैदा किए जाने की प्रक्रिया को ठीक तरह से समझा जा सका। हौसेन की इस खोज की ही देन है कि आज इस श्रेणी के कैंसर के बचाव का टीका भी विकसित किया जा सका। आगे चलकर इस तरह के टीके भी बनाए जा सके जो एच.पी.वी. 18 और 16 के जोखिम को 95 प्रतिशत से भी अधिक नियंत्रित करने में सक्षम हैं। विशेषज्ञों का मत है कि ये विकसित टीके चीर-फाड़ की संभावनाओं को भी अत्यंत कम कर देते हैं।

डॉ. हौसेन को उनकी इस महान् खोज के लिए 2008 में आयुर्विज्ञान के क्षेत्र में प्रदान किए जाने वाले नोबेल पुरस्कार की आधी राशि प्रदान कर सम्मानित किया गया। इस पुरस्कार की शेष आधी राशि को एड्स (एच.आई. वी.) विषाणु की खोज करने वाले वैज्ञानिकद्वय फ्रैंक्वाइस बरेसिनोयूसी और लुक मांटे गनियर के बीच बराबर-बराबर (चौथाई-चौथाई) बांटा गया।

9

'मकोय' : एक उपयोगी वनौषधि

मधु ज्योत्सना

घासों के साथ उगने वाली काली मकोय आम तौर पर खर-पतवार ही मानी जाती है। नम स्थानों पर उगने वाला इसका पौधा देखने में मिर्ची या कालमेघ से काफी मिलता जुलता है। भारतीय उपमहाद्वीप के उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में पाए जाने वाले इसके पौधे में अनेक औषधीय तत्व उपस्थित हैं। औषधि के लिए इसके फल सहित समस्त अंगों का उपयोग होता है।

मकोय में पाए जाने वाले औषधीय तत्व:

मकोय में कई तरह के औषधीय तत्व पाए जाते हैं, इनमें सोलानीन तथा ट्रापेन नामक ऐल्केलॉइड मुख्य हैं। दुनिया में पहली बार सोलानीन नामक तत्व को 1820 में डफोसेस नामक वैज्ञानिक ने मकोय से ही प्राप्त किया था। इसके फल में सोलामार्जिन नामक ऐल्केलॉइड तत्व 4.4 प्रतिशत और बीज में 18.22 प्रतिशत तक पाया जाता है।

मकोय की रोग-निवारक उपयोगिताएं:

आयुर्वेद के अनुसार मकोय तिक्त रस और लघु गुणों से युक्त होता है। इसके उपयोग से वीर्य उष्ण और विपाक कटु होता है। आयुर्वेद में इसे त्रिदोष नाशक, शरीर स्थापक, दीपक, पित्तकारक, रक्तशोधक, मूत्रल, कुष्ठ और ज्वर निवारक बताया गया है।

फल: इसका फल कडुआ, तीक्ष्ण, उष्ण, स्थापक, बल्य और मूत्रल होता है। यह स्वाद और भूख को बढ़ाता है। हृदय और नेत्र रोगों में उपयोगी है। बवासीर, सूजन, (ल्यूकोडर्मा) श्वित्र, पेचिश, उल्टी, दमा, श्वसनी शोथ (ब्रॉन्काइटिस) और बुखार तथा खांसी में भी लाभकारी है।

जड़: इसकी जड़ की छाल से कब्ज दूर हो जाता है। यह नाक, कान तथा नेत्र रोगों में उपयोगी है। यह गले के घाव और जलन में भी उपयोगी है। यकृत रोगों तथा सूजन और पुराने बुखार में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

तना: मकोय के कोमल तने से पुराने और जटिल चर्म रोगों का इलाज किया जाता है। यह सोरायसिस जैसे जटिल रोगों से मुक्ति दिलाता है।

पत्ती: मकोय की पत्तियां सिर-दर्द तथा नासिका रोगों में प्रयोग की जाती हैं।

भारतीय चिकित्सा पद्धति के अलावा मकोय का प्रयोग:

प्राचीन यूनानी चिकित्सा पद्धति में हकीम लोग इसके फलों को सूजन और ज्वर में लगने वाली प्यास में प्रयोग करते हैं। प्राचीन चीनी चिकित्सा पद्धति में इसकी पत्तियों का रस गुर्दे और मूत्राशय की सूजन व दर्द और स्त्री-रोगों में प्रयोग किया जाता है। दक्षिण अफ्रीका के देशों में इसकी पत्तियों के रस को ऐन्थ्रेक्स के दानों पर देशी उपचार के रूप में लगाया जाता है। इसके कच्चे फल को अफ्रीकी लोग दाद पर भी लगाते हैं। चरक और सुश्रुत के अनुसार मकोय का प्रयोग सांप और बिच्छू के काटने के उपचार में प्रयोग होने वाली औषधियों में भी किया जाता है।

आधुनिक युग में विभिन्न आयुर्वेदिक औषधियों में इसका प्रयोग हो रहा है। चर्चित भारतीय औषधीय संस्था हिमालयन ड्रग कंपनी द्वारा बनाई जा रही पाइलक्स टैबलेट, लेप, लिव 52 सिरप और टेबलेट तथा जेरी--फोर्ट नामक औषधियों में यह मुख्य अवयव के रूप में प्रयुक्त होती है। इसके साथ ही विभिन्न वैज्ञानिकों ने अपने शोध से प्राप्त परिणामों के आधार पर पाया है कि यकृत रोगों के लिए मकोय एक अच्छी औषधि है। इसे निद्राजनक, स्वेदजनक, स्थापक, मूत्रल तथा कफनिस्सारक गुणों वाला पाया गया है।

वानस्पतिक परिचय:

इसका वानस्पतिक नाम 'सोलेनम नाइग्रम लिन' है। यह सोलेनेसी कुल का सदस्य है। इसे संस्कृत, बंगला और नेपाली भाषाओं में 'काकमाची' नाम से संबोधित किया जाता है। अंग्रेजी में इसे 'ब्लैक नाइटशे' कहते हैं। यूनानी भाषा में इसे 'मकोफ' कहते हैं। अरबी में इसे 'अनब-उस-तालब' कहते हैं। यह भारत के प्राय: सभी हिस्सों के अलावा दुनिया के सभी उष्ण कंटिबंध क्षेत्रों में पाया जाता है।

इसका पौधा एक से दो फुट के लगभग ऊँचा होता है। इसके पौधे में ढेरों शाखाएं निकलती है। इसकी पत्ती गाढ़े हरे रंग की खुरदरी लगभग दो इंच लंबी होती है। इसमें सफेद फूल लगते हैं जो गुच्छों में तीन से आठ तक की संख्या में पाए जाते हैं। इसका फल शुरुआत में हरा होता है, जो पकने पर गाढ़ा नीलापन लिए हुए काला हो जाता है। इसका फल 6 मि.मी. व्यास तक का पाया जाता है। इसका फल रस से भरा होता है, जिसमें छोटे-छोटे सफेद बीज पाए जाते हैं।

10

यकृतशोथ एक घातक रोग

डॉ.जे.एल. अग्रवाल

लिवर (यकृत) अनेक जाति के विषाणु (वायरस) जैसे हिपेटाइटिस ए.बी.सी.डी.ई इत्यादि से संक्रमित हो सकता है, जिससे पीलिया और अन्य समस्याएं होती हैं। हिपेटाइटिस (यकृत शोध) 'ए' और 'ई' से संक्रमण प्रदूषित जल के सेवन से होता है, जबकि हिपेटाइटिस 'बी', 'सी', 'डी' संक्रमण, संक्रमित व्यक्ति के रक्त एवं अन्य स्रावों लार, वीर्य, पेशाब के संपर्क में आने से होता है। हिपेटाइटिस 'ए' और 'ई' से होने वाले संक्रमण तीव्र यकृत शोथ (एक्यूट हिपेटाइटिस) होते है, जबकि 'बी', 'सी', 'डी' संक्रमण से प्राय: चिरकारी यकृत शोथ (क्रॉनिक हिपेटाइटिस) होता है जिसके कारण मृत्यु तक हो सकती है।

यकृतशोथ होने पर भूख न लगना, हल्का ज्वर, पेट के दाएं ऊपरी हिस्से में दर्द, उल्टी आना जायका बदल जाना, पीलिया, मूत्र पीले रंग का आना आदि जैसी समस्याएं होती हैं। हिपेटाइटिस 'ए' व 'ई' के मरीज कुछ ही दिनों में पूर्णत स्वस्थ हो जाते हैं। हिपेटाइटिस 'बी' के करीब 10-15 प्रतिशत मरीजों में विषाणु शरीर में बने रहते हैं और धीरे धीरे यकृत को क्षतिग्रस्त करते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप यकृत सिरोसिस हो जाता है, इनसे यकृत कैंसर की संभावना भी बढ़ जाती है। हिपेटाइटिस 'डी' से संक्रमण अकेले नहीं बल्कि सदैव हिपेटाइटिस 'बी' के साथ होता है।

हिपेटाइटिस 'सी' से संक्रमण संक्रमित रक्त, रक्त जन्य पदार्थों के संपर्क में आने, संक्रमित लार (चूमने) से हो सकता है। कभी कभी यह रोग संक्रमित मरीज से यौन संबंध बनाने से भी हो सकता है। संक्रमित मां से गर्भस्थ शिशु में इस रोग के फैलने की जानकारी नहीं हैं। हिपेटाइटिस 'सी' का संक्रमण हिपेटाइटिस 'बी' से भी घातक होता है, इससे संक्रमित 70-80 प्रतिशत मरीजों में चिरकारी यकृत शोथ हो जाती है जिसके कारण सिरोसित और यकृत कैंसर हो सकता है।

हिपेटाइटिस 'ए' और 'बी' से बचाव के लिये टीके उपलब्ध हैं। हिपेटाइटिस 'बी' का टीका लगवाने से हिपेटाइटिस 'बी' के साथ ही हिपेटाइटिस 'डी' से भी बचाव होता है, जबकि हिपेटाइटिस 'सी' से बचाव के लिए 'टीका' या प्रतिरक्षाग्लोब्यूलिन (इम्यूनोग्लोविन) अभी उपलब्ध नहीं हैं। हिटेटाइटिस 'सी' के बारे जानकारी समिति है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार विश्व में करीब 17 करोड़ व्यक्ति हिपेटाइटिस 'सी' विषाणु संक्रमित हैं। भारत में करीब 1 करोड़ 96 लाख हिपेटाइटिस 'सी' संक्रमित मरीजों के होने का अनुमान है।

हिपेटाइटिस 'सी' संक्रमण रक्त या रक्त उत्पादों (प्लेटलेट्स आदि) शरीर में पहुंचने से होता है। यदि व्यक्ति नशीले पदार्थों का टीके द्वारा सेवन करता है तो रोग की संभावना ज्यादा होती है। जिन मरीजों को रक्त दोषों (हीमोफीलिया, थैलेसीमिया इत्यादि) के कारण बार-बार खून चढ़ाया जाता है, उन्हे हिपेटाइटिस 'सी' ग्रस्त होने की प्रबल संभावना रहती है। रक्त चढ़ाने के बाद हिपेटाइटिस (पीलिया) के करीब 90 प्रतिशत मरीज में इसका कारण हिपेटाइटिस 'सी' होता है।

शरीर में हिपेटाइटिस 'सी' विषाणु पहुंचने के बाद इनकी संख्या रक्त में बढ़ती जाती है। जिसमे ये यकृत में पहुंचकर यकृत को क्षतिग्रस्त करते हैं। संक्रमण होने के 6 से 9 सप्ताह बाद रोग की पुष्टि होती है। संक्रमित व्यक्ति का यकृत धीरे-धीरे क्षतिग्रस्त होने लगता है और यकृत सिरेसिस के कारण मौत हो सकती है। इनमें यकृत कैंसर का खतरा भी बढ़ जाता है। कुछ महीनों में रोग के लक्षण जैसे पीलिया धीरे-धीरे कम होने लगते हैं।

रोग का निदान और समाधान

हिपेटाइटिस 'सी' के लक्षण अन्य हिपेटाइटिस 'ए', 'बी' सदृश्य ही होते हैं। रोग की पुष्टि के लिये विशिष्ट जांचों एवं प्रतिपिंड पी.सी.आर. जांच की आवश्यकता होती है।

हिपेटाइटिस 'सी' रोग अन्य प्रकार के हिपेटाइटिस से ज्यादा घातक रोग है। इसके बचाव के टीके और प्रभावी उपचार उपलब्ध नहीं हैं। सावधानियां और सुरक्षा ही इस गंभीर घातक रोग से बचाव का एक मात्र उपाय है।

रक्त एवं रक्त उत्पादों की हिपेटाइटिस 'सी' के लिये जांच होनी आवश्यक है। अब रक्त और रक्त के घटकों के उपयोग के पूर्व हिपेटाइटिस 'बी' के साथ हिपेटाइटिस 'सी' की जांच अनिवार्य है। इन्जेक्शन लगाने के लिए सिर्फ विसंक्रमित सुइयों व सीरिंज का प्रयोग किया जाना चाहिए। गुदवाल, एक्यूपंचर, खतना, दांत उखडवाने नाक कान छिदवाने के आपरेशन के लिये भी विसक्रंमित औजारों का ही इस्तेमाल किया जाना चाहिए।

संयमित जीवन व्यतीत करें। अजनबी से यौन संबंध न बनाएं, कंडोम (निरोध) का इस्तेमाल करें। दूसरों के शेविंग ब्रश, उस्तरे, रेजर, टूथ ब्रश का इस्तेमाल भी न करें।

अभी निकट भविष्य में भी हिपेटाइटिस 'सी' के लिए टीका विकसित होने की संभावना नहीं है, क्योंकि शोधों से ज्ञात हुआ है कि यह विषाणु तेजी से अपनी संरचना व गुणों में बदलाव लाता रहता है जिससे टीके का निर्माण आसान नहीं हैं।

अब रोग के उपचार के लिए इंटरफेरॉन का उपयोग किया जाता है। यह 10 प्रतिशत मरीजो में प्रभावी होते हैं और अत्यधिक महंगे हैं। हिपेटाइटिस 'सी' गंभीर व घातक रोग है, यदि सावधानी बरती जाती है तथा सयंमित जीवन व्यतीत किया जाए तो हिपेटाइटिस 'सी' के साथ ही हिपेटाइटिस 'बी', 'डी', एड्स, यौन जनित संक्रमण तथा रक्त से फैलने वाले अन्य अनेक रोगों से भी बचाव हो सकता है।

11

स्वास्थ्य एवं स्वास्थय-सेवा: एक परिदृश्य

संजय चौधरी

उत्तम स्वास्थ्य की आवश्यकता

मनुष्य के स्वास्थ्य को उसकी बड़ी संपत्ति माना जाता है। जानकारों के अनुसार मनुष्य के आहार-व्यवहार पर उसका स्वास्थ्य निर्भर करता है। आहार-व्यवहार में किसी भी प्रकार का असंतुलन न केवल मनुष्य की प्राण-शक्ति और प्रतिरोधक-क्षमता में कमी लाता है, बल्कि उसके शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को भी प्रभावित करता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन स्वास्थ्य को केवल शरीर से नहीं बल्कि व्यक्ति के मन और मस्तिष्क से भी जोड़ कर देखता है। वास्तव में, स्वस्थ रहना या बीमार पड़ना व्यक्ति के अपने हाथ में है। माना जाता है कि मन से स्वस्थ रहकर मनुष्य स्वयं को अधिकांश रोगों से दूर रख सकता है। दूसरों शब्दों में कहें तो स्वास्थ्य भौतिक और सामाजिक पक्ष रहित अपने संपूर्ण स्वास्थ्य के साथ व्यक्ति के एकरूप होने की अवस्था है। इसके अंतर्गत स्वस्थय बने रहने के लिए व्यक्ति आंतरिक और बाहरी पर्यावरण में होने वाले परिवर्तन के अनुसार स्वयं को ढाल लेता है।

शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए व्यक्ति के मस्तिष्क और उसके शरीर के बीच पूरा तालमेल होना जरूरी है। इस प्रकार, अपने जीवन में संतुलन बनाए रखकर मनुष्य स्वयं को स्वस्थ एवं निरोग बनाए रख सकता है। लेकिन भौतिक और सामाजिक पक्ष के प्रतिकूल होने अथवा अन्य कई सामाजिक–आर्थिक कारणों से भी व्यक्ति बीमारियों का शिकार बनता है। यही कारण है कि हर देश की सरकार आम लोगों के स्वास्थ्य की देखभाल के लिए प्राथमिकता के आधार पर चिकित्सा सुविधाओं की व्यवस्था करती है। अस्पताओं एवं दवाखानों के निर्माण तथा गांवों व शहरों के हर स्तर पर स्वास्थ्य–सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए अलग से योजनाएं बनाई जाती हैं तथा इन्हें कार्यरूप दिया जाता है। भारत में प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा को समुन्नत बनाने के लिए अलग से धनराशि रखी जाती है तथा योजनाओं पर अमल किया जाता है।

भारतीय संविधान में स्वास्थ्य का विषय

भारतीय संविधान में स्वास्थ्य को देश के नागरिकों के मौलिक अधिकार के रूप में स्वीकार किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 47 के अनुसार देश के नागरिकों के जीवन-स्तर एवं पोषण के स्तर को उठाना तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार लाना राज्य का प्राथमिक कर्तव्य है। स्वास्थ्य के अधिकार का उल्लेख संविधान के अन्य अनुच्छेदों में भी किया गया है, जैसे नीति निर्देशक तत्वों से संबंधित अनुच्छेद 38 (लोगों के हितों के संवर्धन हेतु सामाजिक व्यवस्था), 39 (च) (शोषण के विरुद्ध मजदूरो, पुरुषों, महिलाओं और बच्चों के स्वास्थ्य की सुरक्षा) एवं 41 (रुग्णता एवं अपंगता सहित विशेष मामलों में सार्वजनिक देखभाल का अधिकार)।

स्वास्थ्य सेवा के संबंध में केंद्र सरकार की जिम्मेदारी है – देश भर के लिए स्वास्थ्य विषयक कानून बनाना, राष्ट्रीय योजनाएं तैयार करना और उन्हें कार्यान्वित करना,

स्वास्थ्य, विषयक शोध कार्य, औषधि उत्पादन, औषधि नियंत्रण, अन्न और स्वास्थ्य शिक्षा का नियमन, अंतरराष्ट्रीय यात्रियों की स्वास्थ्य संबंधी जांच, इत्यादि। राज्यों में इन कार्यों को लागू करने का दायित्व राज्य सरकारों का होता है। उदाहरण के लिए आयुर्विज्ञान शिक्षा, राष्ट्रीय स्वास्थ्य योजनाएं, भोजन व औषधि नियंत्रण आदि। ग्रामीण क्षेत्रों के प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, ग्रामीण अस्पताल, स्वास्थ्य उपकेंद्र, शहरी इलाकों में सरकारी अस्पताल, दवाखाने आदि चलाने की जिम्मेदारी भी राज्य सरकार की होती है। निजी दवाखानों एवं अस्पतालों का नियंत्रण करने की जिम्मेदारी राज्य सरकारों और नगर पालिकाओं की संयुक्त रूप से होती है लेकिन, अधिकतर मामलों में यह उत्तदायित्व उपेक्षित ही रहता है।

अस्वच्छ परिवेश अर्थात् अस्वस्थ समाज

अज्ञान और संसाधनों के अभाव में मनुष्य अक्सर अपने आसपास के परिवेश को स्वास्थ्य की दृष्टि से अस्वच्छ एवं रोगमूलक बना लेता है। स्थिति तब और अधिक खराब हो जाती है जब इस अस्वास्थ्यकर परिवेश के साथ जनसंख्या-वृद्धि, पर्यावरण के बढ़ते प्रदूषण तथा प्राकृतिक नियमों के विपरीत मानव की असंतुलित जीवन-शैली का संयोग होता है। देश एवं समाज की आर्थिक-सामाजिक दशाओं तथा लोगों की धार्मिक-पारंपरिक धारणाओं व मान्यताओं का भी मनुष्य के स्वास्थ्य पर सीधा प्रभाव पड़ता है। लेकिन अधिकांश स्वास्थ्य-विशेषज्ञ मानते हैं कि पर्यावरण और परिवेश मनुष्य के स्वास्थ्य को सबसे अधिक प्रभावित करते हैं। इस सहसंबंध को प्रवाह-चित्र 1 में दर्शाया गया है।

औद्योगीकरण, शहरीकरण एवं अन्य मानवीय गतिविधियों का केंद्रीकरण

↓

जनसंख्या घनत्व में वृद्धि

↓

सफाई तथा स्वच्छता की व्यवस्था में कमी

↓

संक्रामक रोगों में वृद्धि एवं हानिकारक रोगों की अधिकता

↓

प्रति व्यक्ति आय में कमी

↓

जीवन-यापन के लिए न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति की चुनौती

↓

प्राकृतिक संसाधनों के दोहन से पर्यावरण की क्षति

↓

परिवार के लिए निम्नतम स्वास्थ्यवर्धक वातावरण

↓

विभिन्न रोगों की उत्पत्ति तथा इनके कारण संसाधनों की हानि

प्रवाह-चित्र 1- पर्यावरण, मानवीय गतिविधियाँ एवं स्वास्थ्य का पारस्परिक संबंध

भारत के लोगों की स्वास्थ्य आवश्यकताओं के अनुरूप चिकित्सा सुविधाओं एवं संबंधित सेवाओं के विस्तार का कार्य काफी समय पहले से सरकार द्वारा किया जा रहा है। लेकिन अभी तक हमारे देश में स्वास्थ्य-सेवा का तंत्र राष्ट्रीय अपेक्षाओं को पूरा करने में असफल रहा है। ऐसे में स्वास्थ्य की वर्तमान गुणवत्ता के अंतरराष्ट्रीय स्तर को छूने अथवा उस स्थिति के आसपास पहुंचने की बात सोचना हास्यास्पद ही कहलाएगा। उपयोगिता एवं गुणवत्ता की दृष्टि से भारतीय स्वास्थ्य-सेवा तंत्र में व्याप्त कमियों के लिए अन्य बहुत से कारणों के साथ-साथ देश की आर्थिक-सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों को भी जिम्मेदार माना गया है।

हमारे देश में स्वास्थ्य-सेवा से संबंधित वर्तमान तंत्र अपेक्षित स्तर का इसलिए नहीं हो पाया है क्योंकि देश में उपलब्ध चिकित्सा सुविधाएं, स्वास्थ्य सेवाओं का वर्तमान ढांचा और प्रशिक्षत स्वास्थ्यकर्मियों की संख्या हमारी जनसंख्या की जरूरतों की अपेक्षा अत्यंत अपर्याप्त है। ऐसे में समाज के हर वर्ग के लिए समुचित स्वास्थ्य सेवा की व्यवस्था करना सरकार के लिए एक चुनौतीपूर्ण कार्य होता जा रहा है। आम नागरिकों को दिए गए स्वास्थ्य के अधिकार के परिप्रेक्ष्य में भारतीय स्वास्थ्य सेवा का विवेचन करना आवश्यक हो जाता है। तालिका 1 में स्वास्थ्य-सेवा के निर्धारित मापदंडों की दृष्टि से विश्व के प्रमुख देशों में स्वास्थ्य-सेवा की स्थिति दर्शाई गई है।

तालिका 1 : स्वास्थ्य-सेवा के प्रमुख मानकों की दृष्टि से प्रमुख देशों की स्थिति

सुविधाएं/देश	2 से 5 आयुवर्ग में कुपोषण की दर	0 से 4 आयुवर्ग में मृत्यु-दर का प्रतिशत	स्वास्थ्य-सेवाओं पर जीडीपी का हिस्सा (प्रतिशत		स्वास्थ्य-सेवाओं से वंचित लोग (प्रतिशत)		स्वास्थ्य-सेवा (प्रति एक हजार आबादी के लिए)		टीकाकरण का प्रतिशत	
			सरकारी खर्च	निजी खर्च	सफाई (शौचालय)	साफ पेयजल	अस्पताल बिस्तर	प्रशिक्षित डॉक्टर	त्रिकवैक्सीन	खसरे का टीका
1.भारत	65	10.5	1.3	4.7	85	30	0.7	0.41	83	77
2.चीन	41	3.6	2.1	1.4	15	30	2.6	1.37	95	96
3.अन्य एशियाई देश	53	8.2	1.8	2.7	60	40	1.8	0.31	81	78
4.दक्षिणी अफ्रीकी देश	39	15.2	2.5	2.0	65	52	1.4	0.12	52	52
5.लैटिन अमरिकी देश	26	5.1	2.4	1.6	3.0	25	2.7	1.25	71	75
6.मध्य पूर्व के देश	50	9.0	2.4	1.7	40	30	2.9	1.0	75	74
7.पूर्वी कम्युनिस्ट (भूतपूर्व) देश	4	1.9	2.5	1.0	15	10	11.4	4.0	77	86
8.विकसित देश	4	1.0	5.6	3.5	15	5	8.3	2.5	80	77
9.विश्व का औसत	42	8.7	4.9	3.2	40	30	3.6	1.34	80	79

(स्रोत : विश्व बैंक रिपोर्ट के आंकड़े)

देश में स्वास्थ्य सेवा के लिए आधासंरचना के विकास पर पर्याप्त ध्यान न देने तथा अशिक्षा, बेरोज़गारी, अंध विश्वास, भ्रष्टाचार आदि के कारण स्वास्थ्य संबंधी योजनाओं को अब तक अपेक्षित सफलता नहीं मिल पाई है। इस पृष्ठभूमि में देश के दूर-दराज के इलाकों में छोटी-बड़ी अनेक बीमारियों ने बड़ी संख्या में लोगों को अपना शिकार बना रखा है। ब्रिटेन के प्रसिद्ध स्वास्थ्य जर्नल ''दि लांसेट'' के नवीनतम अंक में प्रकाशित 'ग्लोबल बर्डेन ऑफ डिजीजेज, इंजुरीज एंड रिस्क फैक्टर्स' नामक अध्ययन के परिणाम बताते हैं कि पूरी दुनिया में महिलाओं एवं पुरुषों का औसत उच्च रक्तदाब कम हुआ है लेकिन भारत में यह बढ़ रहा है। वर्ष 1980 से 2008 के बीच भारत में उच्च रक्तदाब-संबंधी समस्या से ग्रस्त लोगों की संख्या 21प्रतिशत से बढ़कर 26प्रतिशत तक पहुंच गई है। उल्लेखनीय है कि उच्च रक्तचाप एक ऐसी बीमारी है जो मोटापे और मधुमेह जैसी बीमारियों के विपरीत, शहरी व ग्रामीण लोगों के बीच कोई भेदभाव नहीं करता।

स्वास्थ्य सेवा का भारतीय परिदृश्य

भारतीय परिदृश्य में यह भी पाया गया है कि गरीबी और कुपोषण के कारण लोग तरह-तरह की बीमारियों के चंगुल में फंस जाते हैं और फिर आसानी से निकल नहीं पाते। कुपोषण जनित मौतों की जांच हेतु सरकार द्वारा डॉ. अभय बांग के नेतृत्व में गठित समिति की रिपोर्ट से यह बात स्पष्ट हुई है। समिति द्वारा वर्ष 2004 में प्रस्तुत रिर्पोट में बताया गया कि कुपोषण के कारण शहरी झुग्गी-झोपड़ियों में प्रति वर्ष 56,000 मौतें हो जाती हैं। यह बात भी सामने आई कि ग्रामीण क्षेत्रों के विपरीत अधिकांश शहरों में प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों का घोर अभाव है। प्राय: बड़े शहरों में अत्याधुनिक सुविधा वाले बड़े अस्पताल होते हैं लेकिन प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा-तंत्र अनुपस्थित होता है। अधिकांश शहरी क्षेत्रों में सरकारी दवाखाने, प्रसूति गृह एवं टीकाकरण केंद्र बहुत ही कम हैं और जो थोड़े-बहुत हैं, उनमें स्टाफ की भारी कमी है।

ग्रामीण क्षेत्रों का पिछाड़पन स्वास्थ्य-सेवाओं के साथ-साथ इलाज च चिकित्सा संबंधी सुविधाओं की कमी के रूप में इन क्षेत्रों में स्पष्ट नज़र आता है। सुविधाओं की कमी के कारण पिछड़े इलाकों में कुत्तों एवं अन्य जहरीले जानवरों के काटने पर लोगों को उचित सुविधा नहीं मिल पाती और काफी बड़ी संख्या में लोगों की मौत हो जाती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार भारत में कुत्तों के काटने के कारण हर साल लगभग 20,000 लोग अपनी जान से हाथ धो बैठते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति वर्ष सर्पदंश के कारण मरनेवाले लोगों की संख्या इससे भी अधिक है क्योंकि उपचार की प्राथमिक सुविधा उपलब्ध न होने के कारण अक्सर लोग झाड़-फूंक और टोने-टोटके जैसे अंधविश्वास के चक्करों में पड़ जाते हैं और इस तरह उन्हें अपनी जान गंवानी पड़ती है।

बड़ी बीमारियों में कैन्सर, क्षय रोग, कुष्ठ रोग, मधुमेह आदि रोगों का आतंक हमारे देश में अधिक है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार भारत में प्रत्येक वर्ष लगभग 20 लाख लोग क्षय रोग से संक्रमित होते हैं और लगभग 4.50 लाख लोगों की इसके कारण मौत हो जाती है। दूसरी ओर कैन्सर को विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भारतीय स्वास्थ्य परिदृश्य के लिए एक बड़ा खतरा बताया है और देश में इसके रोगियों की संख्या में भविष्य में तेज वृद्धि होने की चेतावनी भी दी है। भारत के लगभग 70% कैन्सरग्रस्त रोगी रोग की अंतिम अवस्था से जूझ रहे हैं तथा बीमारी के कारण होने वाली मौतों में कैन्सर जनित मौतों का स्थान तीसरा पाया गया है। अनुमान लगाया गया है कि वर्ष 2020 तक स्थिति इतनी खराब हो जाएगी कि भारत में मरनेवालो की कुल संख्या में से 65% मौतों का कारण मधुमेह, उच्च रक्तदाब, कैन्सर एवं एड्स जैसी बीमारियां होंगी।

विश्व बैंक अथवा विश्व स्वास्थ्य संगठन जैसे अंतरराष्ट्रीय संगठनों द्वारा सहायता प्राप्त स्वास्थ्य सेवा केंद्रों की विकास एवं स्वास्थ्य सेवा योजनाओं के कार्यान्वयन में होने वाली देरी के कारण भी कई क्षेत्रों

में स्वास्थ्य से संबंधित समस्याएं बढ़ती जा रही हैं। स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध कराने की दृष्टि से सरकार द्वारा चलाए जा रहे आंगनबाड़ी एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य केंद्रों के कार्य को इनके द्वारा प्रदत्त सेवा की गुणवत्ता की दृष्टि से किसी भी प्रकार संतोषजनक नहीं माना जा सकता। यही बात महानगरों में केन्द्रीय सरकार कर्मचारियों को स्वास्थ्य सुविधा प्रदान करने वाले केंद्रीय सरकार स्वास्थ्य योजना (सीजीएचएस) सेवा केद्रों पर लागू होती है। अधि कांश मामलों में आवश्यक दवाएं उपलब्ध न होने की वजह से लोगों की स्वास्थ्य संबंधी परेशानियां यहां पूरी तरह से दूर नहीं हो पाती हैं।

स्वास्थ्य-सेवा में सुधार

स्वास्थ्य-विशेषज्ञ मानते हैं कि पुरानी बीमारियों के साथ-साथ तेजी से पनपती नई-नई बीमारियों के कारण स्वास्थ्य-सेवा के क्षेत्र में जितनी समस्याएं उत्पन्न हुई हैं, उनके समाधान के लिए सरकार को अविलंब कारगर उपाय करने होंगे। विश्व परिदृश्य में देखें तो आज उच्च रक्तदाब, मधुमेह, एवं हृदयरोग के रोगियों की संख्या निरंतर बढ़ रही है, जिसके नियंत्रण के लिए स्वास्थ्य के क्षेत्र में सेवा के स्तर को समुन्नत बनाने के प्रयास काफी महत्व रखते हैं। लेकिन हमारे देश में स्वास्थ्य--सेवा के अंतर्गत रोग प्रबंधन, निवारक एवं सुरक्षात्मक स्वास्थ्य सेवा, उत्तम स्वास्थ्य हेतु कारगार उपायों का कार्यान्वयन, स्वच्छता एवं आरोग्यवर्धक आदतों को बढ़ावा देना आदि महत्वपूर्ण बातों पर समुचित ध्यान नहीं दिया जाता है। अत: स्वास्थ्य से संबंधित समस्याओं के संदर्भ में हर स्तर पर उपर्युक्त बिंदुओं पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है।

देश में स्वास्थ्य-सेवा तंत्र के सम्मुख उपस्थित समस्याओं को दूर करने तथा स्वास्थ्य से संबंधित सुविधाओं को सुदृढ़ बनाने के लिए यह आवश्यक है कि चिकित्सा के क्षेत्र में शोध-कार्य को बढ़ावा दिया जाए। यों भारत सरकार ने समय-समय पर इसके लिए अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। एक शताब्दी पूर्व, वर्ष 1911 में भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद (इंडियन काउन्सिल ऑफ मेडिकल रिसर्च) की स्थापना भारत सरकार द्वारा इसी उद्देश्य से की गई थी। वर्तमान में 21 राष्ट्रीय अनुसंधान संस्थाओं और 6 क्षेत्रीय अनुसंधान संस्थाओं के माध्यम से परिषद् नवीनतम शोध-कार्य को बढ़ावा दे रहा है। लेकिन वैज्ञानिक शोध के क्षेत्र में शोधकर्ताओं को प्राथमिक सुविधाएं देना, उच्चतम स्तर के शोध के लिए पर्याप्त बजट उपलब्ध कराना एवं विभिन्न प्रशासनिक स्तरों पर छोटी-बड़ी बाधाओं को दूर करना जरूरी है ताकि स्वास्थ्य-विज्ञान में भारतीय शोध-कार्य को शिखर पर पहुंचाया जा सके।

यदि हम अपने देश में स्वास्थ्य-सेवा को मजबूत आधार देना चाहते हैं तो रोगों पर नियंत्रण की दृष्टि से निवारक एवं सुरक्षात्मक स्वास्थ्य सेवा के सुदृढ़ीकरण तथा स्वच्छता एवं आरोग्यवर्द्धक उपायों के प्रचार-प्रसार आदि बातों पर हमें सर्वाधिक ध्यान देना होगा। भारतीय स्वास्थ्य-सेवा क्षेत्र के बारे में अनुमान है कि अगले कुछ वर्षों के दौरान प्रशिक्षित स्वास्थ्यकर्मियों की भारी कमी हो जाएगी। विशेषज्ञों के अनुसार वर्ष 2012 तक देश को 45,000 डाक्टरों और वर्ष 2015 तक 3.5 लाख नर्सो की कमी का सामना करना पड़ सकता है। अत: भविष्य की जरूरतों के संदर्भ में हमें दूरगामी कार्यनीति के अनुसार स्वास्थ्य-सेवा के क्षेत्र में अवसरंचना के विकास तथा प्रशिक्षित स्वास्थ्यकर्मियों की भर्ती जैसे विषयों को सबसे अधिक प्राथमिकता देनी होगी और तात्कालिक उपाय करने होंगे।

विश्व स्वास्थ्य संगठन का मानना है कि प्रशिक्षित स्वास्थ्यकर्मियों की कमी के कारण कई देशों की स्वास्थ्य सुविधाएं बुरी तरह से प्रभावित हो रही हैं। हमारे देश में स्वास्थ्य-सेवा के क्षेत्र में प्रत्येक स्तर पर नर्सों की भारी कमी है। विश्व स्वास्थ्य संगठन का मानना है कि प्रति 500 बीमार व्यक्तियों पर 1 नर्स के नर्स-बीमार अनुपात के सरकार लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भारत को वर्ष 2012 तक 24 लाख नर्सों की आवश्यकता होगी। अध्ययन में यह बात भी सामने आई कि स्वास्थ्य सुविधाओं का अनियोजित विकास तथा स्वास्थ्यकर्मियों

का अभाव झेल रहे राज्यों को स्वास्थ्य-सेवा के क्षेत्र पर तत्काल ध्यान देना होगा क्योंकि इन्हीं राज्यों में शिशुओं एवं बच्चों की मृत्यु-दर सर्वाधिक है।

यह सदी है कि देश के दूर-दराज के इलाकों तक स्वास्थ्य-सुविधाएं पहुंचाने के लिए भारत सरकार ने समय-समय पर अनेक योजनाओं का कार्यान्वयन किया है। अतीत की अधिकतर सरकारी योजनाएं संक्रामक रोगों पर नियंत्रण के उद्देश्य से तैयार की गई थीं। लेकिन अब निजी क्षेत्र की भागीदारी के साथ सरकार सभी पुरानी योजनाओं के बीच समन्वय स्थापित करने की ओर अधिक ध्यान दे रही है। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन और राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन को अब राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के अंतर्गत सम्मिलित किया गया है। सरकार ने इस मिशन के लिए 15,000 करोड़ रुपए का बजट रखा है। सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा के लिए आधासंरचना के विकास पर यह मिशन विशेष रूप से ध्यान देगा।

पिछले कुछ वर्षों के दौरान भारत में स्वास्थ्य--सेवाओं का अच्छा विस्तार हुआ है जिसके परिणामस्वरूप आम लोगों को भी उपचार की अत्यंत आधुनिक सुविधाएं उपलब्ध कराई गई हैं। लेकिन जनसंख्या वृद्धि की तेज दर और इलाज पर होने वाले भारी खर्च के कारण ये सुविधाएं अधिकांश लोगों के लिए निरर्थक हैं। यहां तक कि मध्यवर्ग के लोग भी बिना किसी स्वास्थ्य बीमा के इन सुविधाओं का कोई लाभ नहीं उठा पाते। इसीलिए स्वास्थ्य बीमा की विभिन्न योजनाओं में लोगों की रुचि बढ़ रही है जिसके लिए सरकार की ओर से भी बढ़ावा दिया जा रहा है। विभिन्न वर्गों के लिए स्वास्थ्य बीमा की विशेष योजनाएं लागू की गई हैं। इसके साथ-साथ केंद्र सरकार ने हाल ही में स्वास्थ्य बीमा योजनाओं को प्रोत्साहन देने के लिए कुछ रियायतों की घोषणा भी की है।

भारत सरकार द्वारा घोषित अनेकानेक स्वास्थ्य योजनाओं तथा चिकित्सा सेवा के आधासंरचनात्मक विकास को बढ़ावा देने के गंभीर प्रयासों के बावजूद भारत में स्वास्थ्य सुविधाओं की गुणवत्ता में गिरावट आई है। स्वास्थ्य से संबंधित राष्ट्रीय योजनाओं को पूरा करने में होने वाला विलंब और सेवा के स्तर की निगरानी में लापरवाही बरतने आदि कारणों से इनका पूरा लाभ देश को नहीं मिल सका है। वास्तव में स्वास्थ्य-सेवा के स्तर का सीधा संबंध देश में स्वास्थ्य सेवा के कार्य से संबद्ध लोगों से हैं। अनुमानों के अनुसार स्वास्थ्य-सेवा के क्षेत्र में इतनी संभावनाएं है कि वर्ष 2012 तक लगभग 90 लाख लोगों की भर्ती स्वास्थ्य-कार्मिकों के रूप में की जानी अपेक्षित है। लेकिन स्वास्थ्य-सेवा के कुशल प्रबंधन हेतु यह आवश्यक है कि स्वास्थ्य सेवा के प्रशासनिक कार्यों के लिए भी कुशल एवं ईमानदार लोगों को अधिक से अधिक महत्वपूर्ण जिम्मेदारी दी जाए।

स्वास्थ्य-सेवा के क्षेत्र में विद्यामन कमियों के कारण देश स्वास्थ्य से संबंधित लक्ष्यों को प्राप्त करने में असफल रहा है। स्वास्थ्य-सेवा की इन कमियों को हमारे वर्तमान प्रधानमंत्री भी स्वीकार कर चुके हैं-- ''भारतीय स्वास्थ्य सेवा में सार्वजनिक स्वास्थ्य के मुद्दों और निरोधक चिकित्सा की अब तक उपेक्षा की गई है। आजादी के इतने साल बाद भी स्वास्थ्य के क्षेत्र में हम बहुत मजबूत नहीं हो पाए हैं। खासकर देश के कई गांवों में बुनियादी सेवाओं का बुरी तरह से अभाव है।'' यही कारण है कि भविष्य में केंद्र सरकार पूरे देश में स्वास्थ्य सेवा के आधासंरचनात्मक विकास पर अपना ध्यान केंद्रित करने जा रही है। इसके लिए देश भर में अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान जैसे कम से कम 12 बहुआयामी विशेषताओं एवं आधुनिकतम सुविधाओं वाले नए अस्पताल खोलने की योजना बनाई गई है।

देश में स्वास्थ्य--सेवा को सुदृढ़ बनाने के लिए जरूरी है कि सरकारी चिकित्सा-तंत्र में चिकित्सा से संबंधित स्वदेशी ज्ञान एवं देसी उपचार--पद्धति का अधिकतम उपयोग सुनिश्चित किया जाए। औषधि विज्ञान से संबंधित विभिन्न प्राचीन ग्रंथों में जड़ी-बूटियों, वनस्पतियों, पशुओं एवं खनिज तत्वों से प्राप्त होने वाली असंख्या औषधियों का विस्तार से उल्लेख है। यह विस्तृत वर्णन स्वास्थ्य एवं चिकित्सा के क्षेत्र में ज्ञान का एक अनमोल भंडार है। भारत में जड़ी-बूटियों की प्रचुर उपलब्धता स्वास्थ्य-सेवा को सुदृढ़ बनाने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण कारक है। इनमें से कई जड़ी-बूटियों में विद्यमान चिकित्सयि गुण भी अद्वितीय माने गए हैं जो देसी उपचार अथवा घरेलू इलाज के रूप में हमारे देश में सदियों से काम में लाए जा रहे हैं। आधुनिक स्वास्थ्य--सेवाओं में भी उन्हें यथासंभव अपनाने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

1. रोगों की जांच, निवारण एवं रोकथाम हेतु प्रशिक्षित कार्मिकों की उपलब्धता सुनिश्चित की जाए।
2. देश के सभी क्षेत्र के लोगों को चिकित्सा सुविधाओं की समान उपलब्धता प्रदान की जाए।
3. देश की प्राकृतिक विविधताओं के अनुरूप राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति का विकास किया जाए।
4. स्वास्थ्य की राष्ट्रीय योजनाओं का समुचित कार्यान्वयन एवं स्वास्थ्य सुविधाओं की गणुवत्ता की निगरानी सुनिश्चित की जाए।
5. देश के हर क्षेत्र में चिकित्सा महाविद्यालयों की सुविधा समान रूप से उपलब्ध हो।
6. चिकित्सा क्षेत्र के लिए बजट में वृद्धि व दूरस्थ चिकित्सा (टेलीमेडिसिन) हेतु संरचनात्मक ढांचे का विकास हो।
7. कुपोषण व संक्रमण के शिकार अत्यंत गरीब लोगों के लिए निशुल्क चिकित्सा केंद्र स्थापित किए जाएं।
8. स्थानीय जलवायु एवं भारतीय आर्थिक-सामाजिक परिवेश के अनुसार उपचार का विकास हो।
9. जीनोमिकी, प्रोटियोमिकी, जैव प्रौद्योगिकी नैनोप्रौद्योगिकी इत्यादि नवीन विधाओं का समावेश किया जाए।
10. स्वदेशी चिकित्सा ज्ञान एवं भारतीय उपचार-पद्धतियों के उपयोग हेतु वैज्ञानिक अध्ययन को प्रोत्साहन दिया जाए।
11. स्वास्थ्य मेलों में संक्रामक रोगों, परजीवी जनित रोगों ग्रामीण स्वास्थ्य आदि विषयों पर जानकारी लोगों को सुलभ कराई जाए।
12. स्वास्थ्य--चेतना हेतु संचार-माध्यमों के द्वारा प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए।
13. इंटरनेट पर स्वास्थ्य-संबंधी समस्याओं और उपलब्ध सुविधाओं के संबंध में अद्यतन जानकारी भारतीय भाषाओं में उपलब्ध कराई जाए।
14. दृश्य-श्रव्य माध्यम के अधिकाधिक प्रयोग से आम जनता में स्वास्थ्य-चेतना का विकास किया जाए।
15. स्कूली शिक्षा में स्वस्थ जीवन की बुनियादी बातों और स्वच्छ एवं स्वस्थ आदतों से संबंधित जानकारी को सम्मिलित किया जाए।

सबके लिए स्वास्थ्य की उत्तम व्यवस्था सुनिश्चित करने के लिए जरूरी है कि सरकार अपने दायित्वों के प्रति एवं सभी नागरिक अपनी भूमिका के प्रति जागरूक बनें। यह भी आवश्यक है कि जन शिक्षण और जन सूचना प्रसार के माध्यम से आम लोगों तक स्वास्थ्य--योजनाओं और संबंधित सुविधाओं की पूरी जानकारी पहुंचाई जाए। स्वास्थ्य संबंधी लक्ष्य तभी पूरे किए जा सकते हैं जब सभी संबंधित पक्षों द्वारा उपर्युक्त बिंदुओं के कार्यान्वयन पर पूरी गंभीरता से अमल किया जाएगा।

संदर्भ

1. ''हमारा स्वास्थ्य'' (2001), शाम अष्टेकर, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली

2. ''रोगों से कैसे बचे'' (2000), डॉ. प्रेमचंद स्वर्णकर, राजपाल एंड सन्स, नई दिल्ली

3. ''भारत में औद्योगिक श्रमिकों का स्वास्थ्य'' (2000), संजय चौधरी एवं अन्य, राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी हिंदी संगोष्ठी, सीएमआरआई, धनबाद, अप्रैल 2000.

4. ''स्वच्छ पर्यावरण से संभव स्वस्थ मानव जीवन'' (2002), संजय चौधरी एवं अन्य, राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संगोष्ठी, केंद्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान, लखनऊ, नवंबर 2002.

5. The Times of India, New Delhi, Sep' 25,2010; Oct' 18,2010; Dec' 21, 2010; Jan' 10,2011; Feb' 4, 2011.

6. www.modernmedicine.com

7. www.indiastats.com

8. www.pugmarks.com

12

आहार सिद्धांत

डॉ. भीमसेन बेहेरा

ऐसा पदार्थ जो मुख मार्ग के माध्यम से ग्रहण किया जाता है, जिसमें जल, अन्न औषधि सम्मिलित हैं, उसे आहार कहते हैं। डल्हण के मतानुसार जिस द्रव्य को अन्न नलिका के माध्यम से ग्रहण किया जाता है, वह आहार है।

अन्न शब्द अन् धातु + न प्रत्य से बनता है। तैत्तिरीय उपनिषद् में वर्णन मिलता है कि वस्तुत: भोजन ही जीवन है। अर्थात् जीवन आहार पर आधारित है। अन्य अर्थ में शरीर ही खाद्य का भक्षक है:

शब्द कल्पद्रम के अनुसार
आहार:, पुम् आङ्+ह+धत्र्,
द्रव्यगलाध:करणम्।
अर्थात् आहर वह द्रव्य है जिसका खाने के बाद गले के माध्यम से निगरण किया जाता है।

वाचस्पत्यम के अनुसार:
आहार:,पुम् आङ्+हृ+घञ् आ हरणे
उपसर्गयोगात् भोजने
आहार-अर्थात् खाद्य, भोजन।

अमर कोष के अनुसार:
आहरणाम्। हृत्र:। घत्र्।

डल्हण के अनुसार:
आहियते अन्न नलिकया यत्तदाहार:।
ऐसे पदार्थ जो मुख मार्ग के माध्यम से ग्रहण करने के पश्चात् गले (ईसोफैगस) के माध्यम से निगला जाता है, उसे आहार क्रहते हैं।

चक्रपाणि के अनुसार:
आहृयात इत्याहारो भेषजमपि।

जो द्रव्य जीव-अवयवों की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है तथा जो चयापचय प्रक्रिया द्वारा ऊर्जा और दैहिक ऊतकों में परिवर्तित होता है, उसे खाद्य कहते हैं।

टैवर्स में: खाद्य की परिभाषा का निम्न प्रकार वर्णन किया गया है:

कोई द्रव्य जो जीव-अवयवों की वृद्धि तथा उनके स्वास्थ्य हेतु उनकी पोषण आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, उसे खाद्य कहते हैं।

मेजर वी.एन.खान: खाद्य वह द्रव्य है जिसे खाने से दैहिक ऊतकों में वृद्धि होती है तथा जिससे उनकी क्षतिपूर्ति होती है, रुग्णता से रक्षा होती है तथा जो सुस्वास्थ्य और ऊर्जा के लिए दैहिक आवश्यकताओं की आपूर्ति करता है।

हैरी बेन्जामिन: खाद्य का कार्य शरीर में विभिन्न अवयवों और उनकी संरचना की क्रियात्मकता हेतु दैहिक आवश्यकताओं की आपूर्ति करना और इस प्रकार पूर्ण मानव-तंत्र के उच्चतम स्तर पर सुसंगत कार्य संपादन को सुनिश्चित करना है।

डी.एफ.टर्नर: ''भोजन के द्वारा जीवित प्राणी अपनी क्रियाशीलता को बनाए रखने के लिए अंगों की वृद्धि

एवं उनके पुनर्निमाण हेतु आवश्यक पदार्थों को प्राप्त करता है और उनका उपयोग करता है।

साधारण शब्दों में भोजन के पाचन तथा अवशोषण की क्रिया पोषण कहलाती है।

चैम्बर्स शब्दकोश में पोषण को निम्न प्रकार परिभाषित किया गया है:

''भोजन चूषक कार्य अथवा प्रक्रिया को पोषण कहा जाता है''।

यहाँ चूषक शब्द का आशय भोजन में विद्यमान प्रमुख तत्वों को खींचकर शरीर का एक अंग बनाना है।

टर्नर के अनुसार: पोषण शरीर में होने वाली विभिन्न क्रियाओं का संगठन है जिसके द्वारा जीवित प्राणी ऐसे पदार्थों को ग्रहण करता है तथा उपयोग करता है जो शरीर के विभिन्न कार्यों को नियंत्रित करते हैं तथा शारीरिक टूट-फूट की मरम्मत करते हैं।

काउन्सिल ऑफ फूड्स एंड न्यूट्रीशन ऑफ दी अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन ने पोषण की परिभाषा निम्न प्रकार दी है:

''पोषण भोजन-पोषक तत्वों तथा उसमें पाए जाने वाले तत्वों के कार्य, उनके आपस में संबंध तथा स्वास्थ्य एवं बीमारी से संबंध एवं संतुलन तथा वह सारी प्रक्रिया है जिसके द्वारा जीव भोजन को ग्रहण करते है''। जैसे: पचाना, अवशोषित करना, परिवहन, प्रयोग तथा उत्सर्जन आदि।

स्वस्थ शरीर के लिए संतुलित भोजन की आवश्यकता होती है। दिन-प्रतिदिन की निश्चित मात्रा और पौष्टिक तत्वयुक्त भोजन से न केवल शारीरिक विकास होता है बल्कि मानसिक और सामाजिक प्रतिष्ठा भी बढ़ती है। अशिक्षित समाज को अक्सर समुदाय के ''आहार' का पूर्ण ज्ञान नहीं होता।

आहार के समस्त पहलुओं का समावेश जिस विषय में होता है उसे आहार विज्ञान के नाम से जाना जाता है। इसे ''पथ्या-पथ्य'' भी कहा जाता है। अत: आहार विज्ञान कला एवं विज्ञान का वह समन्वयात्मक रूप है जिसके द्वारा व्यक्ति के सिद्धांत के अनुसार विभिन्न आर्थिक एवं शारीरिक स्थितियों के अनुरूप भोजन दिया जाता है।

चैम्बर्स शब्दकोश में Dietetics (आहार विज्ञान) का अर्थ "Rule for regulating diet" अर्थात् ''आहार नियंत्रण का नियम'' से लिया गया है।

पोषण एवं व्यवस्था संबंधी समस्त सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए किसी व्यक्ति, समुदाय, विभिन्न आयु एवं लिंग, शारीरिक श्रम, आर्थिक स्थिति रोगों की अवस्था के लिए वैज्ञानिक एवं कलात्मक मिश्रण से तैयार आहार योजना को ''पथ्यापथ्य'' कहते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं से पथ्यापथ्य की निम्न विशेषताओं का उल्लेख होता है:

पथ्यापथ्य विज्ञान एवं कला का मिश्रित रूप है क्योंकि यह योजनाबद्ध तरीके से व्यक्तिगत या समूह की भोजन व्यवस्था से संबंधित है।

इसमें सभी वर्गों, विभिन्न आयु, शारीरिक क्षमता, आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए आहार योजना का प्रारूप तैयार किया जाता है।

आहार-विज्ञान सामान्य आहार का गुणात्मक एवं मात्रात्मक रूपांतरण है। यह कारण और परिणाम के बीच संबंध स्थापित करने के साथ ही आदर्शात्मक स्थिति भी निरूपित करता है।

आहार योजना कार्यक्रम गृहणियों द्वारा भी बनाया जा सकता है। अत: उसे इस बात की जानकार होनी चाहिए कि किस व्यक्ति के लिए कैसा भोजन उपयुक्त है। सभी की आवश्यकताओं में समन्वय स्थापित करना भी आहार विज्ञान की विषय-वस्तु है।

मानव शरीर एक क्रियाशील यंत्र है। इसकी क्रियाशीलता बनाए रखने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है जिससे कि समस्त जैव-अभिक्रियाएँ संपन्न हो सकें। क्रियाशीलता के फलस्वरूप शरीर के अंगों में निरंतर टूट-फूट, घर्षण एवं कुछ न कुछ अपरिवर्तन होता ही रहता है। भोजन से शरीर को ऊर्जा प्राप्त होती है जिससे क्षतिग्रस्त कोशिकाओं एवं ऊतकों का पुन: निर्माण होता है। भोजन द्वारा शरीर में कुछ ऐसे पदार्थों की आवश्यकता की पूर्ति होती है जो हानि और प्रजनन के लिए आवश्यक हैं। स्वस्थ्य एवं सशक्त शरीर का निर्माण उचित पोषण एवं संतुलित आहार पर निर्भर करता है।

मनुष्य को स्वस्थ्य एवं फुर्तीला रहने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है। भोज्य जिसमें विभिन्न खाद्य-पौष्टिक पदार्थ उचित अनुपात में विद्यमान हैं, शरीर में ऊर्जा पैदा करते हैं, जिससे शारीरिक क्रियाएं संपन्न एवं नियंत्रित होती हैं। संसार के प्रत्येक प्राणी व पेड़-पौधों को जब से उसने इस धरती पर जन्म लिया है, भोजन की आवश्यकता रही है। भोजन मानव-जीवन की प्राथमिक आवश्यकता है, जिससे शरीर पोषित होता है। शरीर को शक्ति मिलती है एवं उसका कार्य निरंतर रूप से संपन्न होता है। यह दैनिक जीवन का अनिवार्य भाग है। भोजन में व्याप्त विभिन्न तत्वों जैसे-वसा, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, खनिज-लवण, विटामिन और जल का शरीर में अपना विशेष कार्य है। ये सभी तत्व मिलकर शरीर का निर्माण, ऊर्जा उत्पादन तथा रोगों से रक्षा करने का कार्य करते हैं।

साधारण शब्दों में ऐसे पदार्थ जो खाने योग्य हैं जिन्हें मानव शरीर सरलतापूर्वक ग्रहण कर सके, पचा सके एवं पोषण प्रदान कर सके उन्हें भोजन कहते हैं। भोजन को ठोस अथवा तरल पदार्थ के रूप में भी व्यक्त करते हुए लिखा गया है कि भोजन वह ठोस अथवा तरल पदार्थ है, जिससे शरीर को पोषण प्राप्त होता है, किंतु प्रत्येक भोजन के अलग पौष्टिक तत्वों की विद्यमानता के कारण भोजन में पोषण क्षमता अलग-अलग होती है।

चेम्बर्स शब्दकोश में भोजन को निम्न प्रकार परिभाषित किया गया है।

''शरीर द्वारा ग्रहण किए जा सकने तथा पचाने योग्य वे सभी पदार्थ भोजन कहे जा सकते हैं जो व्यक्ति की शारीरिक वृद्धि एवं विकास की प्रगति में सहायक हैं''।

ऊषा टंडन के अनुसार

''भोजन वह पदार्थ है जो हमारे शरीर को पोषित करता है। प्रत्येक भोज्य पदार्थ में शरीर का पोषण करने की अलग-अलग क्षमता होती है क्योंकि प्रत्येक भोज्य पदार्थ में तत्वों का स्वरूप एवं मात्रा विभिन्न होती है''।

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं एवं अवधारणाओं के आधार पर भोजन की सर्वोत्तम एवं सर्वमान्य परिभाषा निम्न हो सकती है:

''वे पदार्थ जो शरीर में ग्रहण किए जाने के पश्चात् ऊर्जा उत्पन्न करते हैं, नए तंतुओं का निर्माण तथा टूटे-फूटे तंतुओं की मरम्मत करते हैं तथा शारीरिक क्रियाओं पर नियंत्रण तथा शरीर के लिए आवश्यक यौगिकों के बनाने में सहयोग प्रदान करते हैं, भोजन कहलाते हैं''।

उपर्युक्त परिभाषाओं से भोजन की निम्न विशेषताओं का उल्लेख होता है:

- भोजन ठोस या तरल पदार्थ के रूप में हो सकता है।
- भोजन खाने और पचाने योग्य होना चाहिए।
- भोजन से मानसिक संतुष्टि की प्राप्ति एवं मानवीय संबंधों में घनिष्ठता आती है।
- भोज्य पदार्थ शरीर को पोषित करने की क्षमता रखते हैं।
- प्रत्येक भोजन में अलग-अलग पौष्टिक तत्व उपलब्ध होते हैं। अत: उनकी पौष्टिक क्षमता भी भिन्न-भिन्न होती है।

- भोजन शरीर को जीवित रखने तथा क्रियाशील रखने हेतु ऊर्जा प्रदान करता है।

पोषण की प्रायः निम्न स्थितियां होती है:

1. उचित पोषण
2. कुपोषण
3. अतिपोषण (आवश्यकता से अधिक पोषण)
4. अपोषण

उचित पोषण: यह पोषण की वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ्य एवं संतुलित रहे एवं उसकी कार्यक्षमता जलवायु, आयु तथा परिस्थितियों के अनुसार बनी रहे।

व्यक्तियों का शरीर-भार और लंबाई अनुकूलतम होती है। शरीर सुविकसित और सुदृढ़, बाल काले और चमकीले, नेत्र स्वस्थ, स्वभाव से शांत और धैर्यवान एवं रोग-निरोधक क्षमता वाला होता है।

कुपोषण: भोजन में गुणात्मकता के अभाव और अव्यवस्थित भोजन को कुपोषण कहा जाता है। कुपोषण की स्थिति आहार ज्ञान के अभाव, अपर्याप्त भोजन, अस्वास्थकर वातावरण, अनिद्रा एवं नीद की कमी व अनुचित भोजन के कारण उत्पन्न होती है।

अतिपोषण (आवश्यकता से अधिक पोषण): आयु, लिंग या परिस्थितियों के प्रतिकूल आवश्यकता से अधिक पौष्टिक तत्व लेने से अत्यधिक पोषण की स्थिति आ जाती है।

अपोषण: अपोषण का अर्थ है अपर्याप्त पोषण, अर्थात जो पोषण शरीर की आयु एवं आवश्यकता के अनुरूप न हो, जिसमें पौष्टिक तत्वों का अभाव हो, अपोषण कहलाता है ऐसे व्यक्ति का स्वास्थ्य गिर जाता है। अनेक रोग घेर लेते है। शारीरिक विकास रुक जाता है।

जीवन की संवृद्धि शक्ति, परिपक्वता और कर्मण्यता में आहार की भूमिका:

गर्भाधान के समय से ही शरीर में वृद्धि होती है, शक्ति विकसित होती है तथा धीरे-धीरे परिपक्वता आती है। कालयोग, स्वभाव संसिद्धि, आहार सौष्ठव और अविघात देह के विकास के कारक हैं। अंतर्गृहीत भोजन (खाद्य) की उत्कृष्टता एक कारणवाची उपादान कारक है जो शरीर की वृद्धि के लिए उत्तरदायी है।

देह की दो स्थितिया हैं: धातुसाम्य और धातु-वैषम्य। धातुओं के संतुलन में विषमता को रोग कहा गया है तथा सम्यक् संतुलन को स्वास्थ्य का लक्षण माना गया है।

आयुर्वेद ग्रंथों में, विशेषत: चरक संहिता, में स्वभावोपराम वाद (स्वाभाविक विनाश का सिद्धांत-प्राकृतिक अवक्षय सिद्धांत) का वर्णन मिलता है जिसमें यह कहा गया है कि शरीर में निर्माण और विनाश की प्रक्रियाएं साथ-साथ चलती हैं। अस्तित्व के आविर्भाव के लिए अर्थात् जीवन के प्रकटीकरण के लिए निमित्त कारण होता है, परंतु शरीर के विनाश के लिए ऐसा कोई कारण नहीं होता।

जैसा पहले भी कहा गया है कि शरीर की निर्माण-क्रियाओं के लिए खाद्य/भोजन उत्तरदायी है। निर्माण और विनाश की प्रक्रिया शरीर के साथ-साथ चलती है। बाल्यावस्था में निर्माण की प्रक्रिया की प्रधानता होती है। शरीर की निर्माण क्रियाओं के लिए पुष्टिकारक भोजन की आवश्यकता होती है। युवावस्था में निर्माण और विनाश की प्रक्रिया समान रहती है। इसीलिए शरीर पूरी तरह संतुलित रहता है। जहाँ तक धातु साम्य को बनाए रखने तथा धातु के पोषण का संबंध है, उसके लिए पोषक सामग्री (बृहण) की आवश्यकता होती है। वृद्धावस्था में निर्माण की अपेक्षा विनाश की प्रक्रिया में प्रधानता होती है और शरीर का धीरे-धीरे अपह्रास होने लगता है। निर्माण और विनाश की प्रक्रिया स्वाभाविक तथ्यात्मक दृश्य विधान है। शरीर में वृद्धि तथा स्वास्थ्य सवभावोपरमवाद (प्राकृतिक सिद्धांत) पर आधारित है। इस प्रकार आयुर्वेद के शास्त्रीय ग्रंथों में ऐसे अनेक संदर्भ उपलब्ध हैं जिनमें आहार की महत्ता का वर्णन किया गया है।

आधुनिक चिकित्साशास्त्र के विद्वान सामान्यत: यह मानते हैं कि विश्व की प्राचीन चिकित्सा पद्धति के विद्वानों को चयापचय की अवधारणा का समुचित ज्ञान नहीं था। वस्तुत: आयुर्वेद में चयापचय की अवधारणा का विस्तृत विवेचन मिलता है। इसके संदर्भ में आयुर्वेद की चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, अंष्टांग संग्रह और अष्टाङ्ग हृदय आदि शास्त्रीय ग्रंथों में सर्वत्र प्राप्य हैं। अग्नि का संबंध भी आहार से है। चरक ने कहा है कि जीवन प्रक्रिया, रंग-रूप शक्ति, स्वास्थ्य, ऊर्जा, उपचय, ओजस्विता, जीवन शक्ति के लिए 'अग्नि' उत्तरदायी है। अंतर्गृहीत भोजन का समुचित पाचन और चयापचय अग्नि के द्वारा ही होता है। भोजन शरीर का पोषण स्वय नहीं, अपितु अग्नि के सहयोग से करता है। विजातीय आहार द्रव्यों का सजातीय आहार द्रव्यों, दोष, धातु और मल आदि में अंतरण अग्नि के माध्यम से ही होता है। अत: मनुष्य का जीवन और मृत्यु अग्नि के उचित-अनुचित प्रकार्य पर निर्भर करता है।

चरक ने अग्नि को सर्वोपरि माना है। सुश्रुत ने अग्नि को परमात्मा तुल्य माना है। जीवन धारण में प्राण वायु की प्रमुख भूमिका है। परंतु शरीर के निर्माण, वृद्धि और रोगमुक्ति तथा शरीर की अपचय से रक्षा करने में आहार और प्राण की महत्वपूर्ण भूमिका है। अत: आहार और प्राणवायु की महत्ता समान है। वाग्भट्ट ने इसी बात पर बल दिया है कि समुचित रूप से अंतर्गृहीत शरीर के लिए आहार अमृत का कार्य करता है, परंतु वही आहार यदि समुचित रूप से अंतर्गृहीत नहीं हुआ, तो विष का कार्य करता है।

अग्नि को सतत प्रदीप्त रखने के लिए काष्ठ अथवा कोयले रूपी ईंधन की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार जठराग्नि तथा शरीर की अन्य अग्नियों के लिए आहार ईंधन का कार्य करता है। शरीर के लिए चार प्रकार के खाद्य की आवश्यकता होती है। एकमात्र आहार ही शरीर में अग्नि के गुणधर्म को संपोषित करता है। इससे आहार और अग्नि का परस्पर संबंध और परस्पर-निर्भरता प्रकट होती है। यदि भोजन न लिया जाए अथवा कम मात्रा में लिया जाए, तो ईंधन की कमी के कारण अग्नि देह में विद्यमान धातुओं को पचाना प्रारंभ कर देता है। उत्तरोत्तर धातुओं का नाश हो जाता है और दोषों में वृद्धि हो जाती है, जिसकी अंतत: रोगों में परिणति होती है। पोषण के अभाव में धातुक्षय प्रारंभ हो जाता है। ऊतक नष्ट हो जाते हैं और शरीर के अनुरक्षण के लिए अपेक्षित ऊर्जा नष्ट हो जाती है। उत्तरोत्तर क्षीणता के कारण रुग्णता तथा मृत्यु हो जाती है।

आयुर्वेद में इस बात पर बल दिया गया है कि 'आहार' शरीर के सत्व ओजस्विता, रंग-रूप और अन्य आवश्यक तत्वों का पोषक है, परंतु यह कार्य जठराग्नि की समुचित क्रियात्मकता पर निर्भर है। षड्रसयुक्त आहार द्रव्य तीन प्रकार विपाकों (मधुर, अम्ल और कटु) में जठराग्नि के द्वारा परिवर्तित होते हैं।

आयुर्वेद में तेरह प्रकार की अग्नियों का वर्णन मिलता है: एक जठराग्नि, पांच भूताग्नि और सात धात्वाग्नि। इनमें जठराग्नि की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। अन्य अग्नियां अपने कार्यों के सम्यक् संपादन में जठराग्नि द्वारा पोषित होती है। आयुर्वेद के अनुसार आहार को पहले जठराग्नि पचाती है और फिर वह शरीर में पूर्णत: अवशोषित हो जाता है। इसके बाद पांचों भूताग्नियां अपने-अपने घटकों को पचाती है। इससे भोजन धातु में स्वांगीकरण के योग्य हो जाता है। इस प्रकार इसका धात्वग्निपाक होता है और यह धातुओं के पोषण का कार्य करता है। सुश्रुत ने इन्ही विचारों का अनुमोदन किया है।

सात धात्वाग्नियों में प्रत्येक धात्वाग्निपाक में सहायक होती है। इसके परिणाम स्वरूप ठोस धातु का सूक्ष्म धातु भाग (सूक्ष्मतर तत्वों) सहित पोषण होता है।

आयुर्वेद मतानुसार: आहार वर्गीकरण (शास्त्रोक्त)

	चरक	सुश्रुत	
		द्रव्य वर्ग	अन्नपान वर्ग
01	शुकधान्य	जल	धान्य
02	शमीधान्य	क्षीर	मांस
03	मांस	दधि	फल
04	हरित	तक्र	शाक
05	फल	घृत	लवण
06	शाक	तैल	कृतान्त
07	मद्य	मधु	भक्ष
08	अम्बु	इक्षु	अनुपान
09	गोरस	मद्य	
10	इक्षुविकार	मूत्र	
11	कृतान्त		
12	आहारयोगीन		

अष्टांग संग्रहाकार ने आहर वर्ग में भेषज वर्ग को भी ग्रहण किया है जिसमें मरिच, पिप्पली आदि है।

अष्टांग संग्रह			अष्टांग हृदय
पानम्	अन्नम्	द्रव्यम्	आर्द्रवम्
तोयम्	शुकधान्यम्	तोयम्	शुकधान्यम्
क्षीरम्	शिम्बीधान्यम्	क्षीरम्	शिम्बीधान्यम्
इक्षु	पक्वान्नम	इक्षु	पकवान्नम्
तैलम्	मांस	तैलम्	मांस
मद्यम्	शाकम्	मदयम्	शाकम्
मूत्रम	फलम्	मूत्रम्	ओषधवर्ग

चरकानुसार वर्गीकरण:

क्र.सं.	वर्गीकृत	प्रकार	नाम
1	इडिबल (Edible)	1	स्थावरम (Vegetable Products)
2	ओरिजिन (Origin)	2	जांगम (Animal Products)
3	प्रभाव	2	हितम् (Wholesome अहितम् (Unwholesome)
4	वीर्य	2	शीत
5	नेचुरल इनटेक (Natural intake)	4	उष्म असीतम (Eatable) खादितम (Masticable flood) पीतम् (Bevereges) लीढम (Linctus)
6	महाभूत	5	पार्थिव, आप्य, तैजस वायवीय, आकाशीय
7	रस	6	मधुर, अम्ल, लवण कटु, तिक्त, कषाय
8	वीर्य	8	गुरु, लघु, शीत, उष्म स्निग्ध, रुक्ष, मंद, तीक्ष्ण

13

विज्ञान समाचार

डॉ. दीपक कोहली

उच्च रक्त दाब (हाई ब्लड प्रेशर) में मददगर चॉकलेट:

अगर आप उच्च रक्तदाब से पीड़ित हैं, तो आज से प्रतिदिन थोड़ी चॉकलेट खाना शुरू कर दीजिए। एक नये शोध में दावा किया गया है कि प्रतिदिन चॉकलेट खाकर रक्तदाब कम किया जा सकता है।

शोधकर्ताओं के अनुसार प्रतिदिन डार्क चॉकलेट खाने से उच्च रक्त दाब के रोगियों को दिल का दैरा पड़ने का खतरा 20 प्रतिशत कम हो जाता है। डार्क चाकलेट में पाया जाने वाला 'फ्लेवानोल्स' यौगिक प्राकृतिक रूप से शरीर में रक्त वाहिकाओं को खोल देता है। इससे रक्त का प्रवाह आसान हो जाता है और रक्तदाब में कमी आती है। एडीलेड यूनिवर्सिटी के प्रमुख शोधकर्ता 'डॉ. केरिन राइड' के अनुसार, 'रक्त दाब को नियंत्रित करने के लिए हमेशा दवाओं की जरूरत नहीं होती। कुछ खाद्य पदार्थ भी इसमें मदद कर सकते हैं।' इस अनुसंधान के लिए शोधकर्ताओं ने वर्ष 1955 से 2009 के बीच चॉकलेट और कोको पर किए 15 अध्ययनों को आधार बनाया। उन्होंने पाया कि उच्च रक्त दाब से ग्रस्त लोग चॉकलेट खाकर रक्तदाब के खतरे को पांच प्रतिशत तक कम कर सकते हैं। परंतु सामान्य रक्तदाब वालों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

भरपूर नींद है दुरुस्त-छरहरा रहने का मंत्र

बड़े-बुजुर्ग कह गए हैं कि अच्छी नींद सेहत का खजाना है। शोधकर्ताओं ने अच्छी नींद के मूल्यवान आभूषण में एक और नगीना जड़ दिया है। हाल ही में 'एम्सटर्डम' में आयोजित 'इंटरनेशलन काफ्रेन्स ऑन ओबिसिटी' में विशेषज्ञों ने कहा कि भरपूर नींद इंसान को और स्वस्थ बने रहने में मदद करती है यानी नींद में कमी या रुकावट व्यक्ति को मोटापे की ओर ले जाती है, जिसें गंभीर बीमारियों की जड़ माना जाता है।

फ्रांस के डिजोन ने 'यूरोपियन सेंटर ऑफ टेस्ट साइंस' ने कार्यशाला में यह रोचक अध्ययन प्रस्तुत किया। शोध कर्ताओं ने कहा कि एक रात की नींद खराब होने के बाद लोग सामान्य से 550 (22 प्रतिशत) ज्यादा कैलोरी का उपभोग करते हैं जो एक बड़े हैमबर्गर से मिलने वाली कैलोरी के बराबर है। शोधकर्ताओं ने पाया कि अध्ययन के दौरान कम नींद लेने वाले प्रतिभागियों को ज्यादा भूख महसूस हुई। इस वजह से उनका वजन भी बढ़ता गया। इससे पता चला कि नींद में कमी या रुकावट अप्रत्यक्ष तौर पर मोटापे को बढ़ावा देती है जबकि सामान्य तौर पर सात-आठ घंटे सोने वालों ने नियमित आहार ही ग्रहण किया। इस दौरान उनका वजन भी सामान्य रहा। नीदरलैंड की 'मास्ट्रिच यूनिवर्सिटी' में हुए एक अन्य अध्ययन में शोध-कर्ताओं को कुछ ऐसे ही परिणाम मिले। उन्होंने पाया कि जो बच्चे सामान्य से कम नींद लेते हैं, उनके बड़े होकर मोटापे का शिकार होने की संभावना सामान्य नींद लेने वालों से कहीं ज्यादा होती है।

पास्ता खाओ मधुमेह को दूर भगाओं:

पास्ता का सेवन रक्त शर्करा (ब्लड शुगर) के स्तर में कमी लाने के साथ-साथ भूख का अहसास कराने वाले हार्मोनों को भी कम करने में मददगार है। यह बात एक अध्ययन में सामने आई है। पास्ता का सेवन जब सामान्य उच्च कार्बोहाइड्रेट युक्त भोजन जैसे ब्रेड आदि के साथ किया जाता है तो यह कार्बोहाइड्रेट का शरीर में बेहतर अवशोषण सुनिश्चित करता है जिसके परिणास्वरूप रक्त शर्करा का स्तर अपेक्षा से कहीं अधिक घट जाता है। यह खुलासा 'टोरंटो विश्वविद्यालय' के शोधकर्ताओं द्वारा किए गए एक अध्ययन से हुआ है। इस अध्ययन के प्रमुख शोधकर्ता 'डॉ. सिरिल कंडाल' का कहना है कि रक्त में ग्लूकोस की मात्रा घटाना मधुमेह से बचाव और उसके नियत्रंण के लिहाज से महत्वपूर्ण है।

वास्तव में पास्ता के सेवन से मधुमेह से जुड़े जोखिमों में कमी आती है। पास्ता में पाया जाने वाली मोनो संतृप्त वसा शरीर में खराब कोलेस्टेरॉल के स्तर में कमी लाने के साथ-साथ 'अच्छे कोलेस्टेरॉल में बढ़ोतरी करता है जो हृदय के बचाव में सहायक है। कार्बोहाइड्रेट से भरपूर भोजन के साथ पास्ता के सेवन से रक्त शर्करा के स्तर में काफी कमी आती है। जैसे-जैसे पास्ता का सेवन बढ़ता है रक्त शर्करा में भी तेजी से कमी आती है। यदि केवल पास्ता का सेवन किया जाए तो ब्लड ग्लूकोस में बढ़ोतरी न्यूनतम रहती है।

पेटू बनने से रोकेगा एक रसायन:

हर पल कुछ न कुछ खाने का बहाना ढूंढने वालों के लिए वैज्ञानिकों ने एक ऐसा रसायन खोजा है जो उन्हें खाने से रोकेगा। किसी को कुछ खाता देखकर या पुरुषों में दूसरे को सिगरेट का कश लगाते देखकर दिमाग का एक हिस्सा खासतौर पर प्रभावित होता है। 'मैनचेस्टर यूनिवर्सिटी' के शोधकर्ताओं का मानना है कि 'हेमोप्रेसिन' नाम का यह केमिकल ऐसी ही बुरी आदतों से छुटकारा दिलाने में मददगार साबित होगा।

अपने शोध में उन्होंने दावा किया है कि हेमोप्रेसिन दिमाग के संबद्ध हिस्से को अवरुद्ध कर खाने की तलब को दबाता है। इससे पहले वैज्ञानिकों ने 'रिमोनाबंट' नाम का सॅश्लिष्ट उत्पाद विकसित किया था जिसे बाजार में मोटापा रोधी औषधि के रूप में उतारा गया था। लेकिन इस दवा से खाने वालों में अवसाद (डिप्रेशन) और आत्महत्या का प्रयास करने वालों की संख्या में इजाफा होने के कारण इसे बाजार से वापस ले लिया गया था। वैज्ञानिकों के अनुसार इस मामले में हेमोप्रेसिन का कोई इतर प्रभाव नहीं है। चूहों पर हुए इस रसायन के प्रयोग में भी यह बात साबित हुई है। उन्हें जब हेमोप्रेसिन केमिकल दिया गया तो उनकी खाने की प्रवृत्ति कम हुई मगर उनका बाकी व्यवहार सामान्य था।

इसके विपरीत जब उन्हें सिंथेटिक उत्पाद दिया गया तो खाने की तलब तो कम हुई मगर वह असामान्य रूप से बेचैन नजर आए। शोधकर्ता डॉ. डांड के अनुसार डॉक्टरों का दल इस रसायन पर आगे परीक्षण जारी रखने की तैयारी कर रहा है। उनका कहना है कि अगर यह परीक्षण सफल रहते हैं तो यह रसायन शराब, सिगरेट और नशीले पदार्थों की लत छुड़ाने में काफी मददगार होगा। इसके अलावा इसे आहार-नियोजन (डायटिंग) के विकल्प के रूप में भी देखा जा सकता है।

ऊंटनी का दूध अब यूरोप को भी भाया:

मरुस्थल की बेहद मुश्किल जिंदगी में इंसान की दूध की जरूरत पूरी करने वाले 'रेगिस्तान के जहाज' की

अहमियत अब यूरोपीय देशों को भी समझ में आ गई है। संभव है कि आने वाले दिनों में संयुक्त अरब अमीरात से बड़ी संख्या में यूरोप सहित अमेरिका और कनाडा में ऊंटनी के दूध का निर्यात किया जाए। ऊंटनी का दूध गाय और बकरी के दूध का विकल्प तो नहीं है लेकिन इसमें इन्सुलिन की मात्रा अधिक होने के चलते यह मधुमेह के मरीजों के लिए फायदेमंद है।

दुबई में 'सेंटर फॉर वेटरिनरी रिसर्च लेबोरेटरी' के वैज्ञानिक निदेशक 'यूरिक वर्नरी' ने बताया कि जिन्हें दुग्ध प्रोटीन से एलर्जी है उन्हें भी यह दूध नुकसान नहीं पहुंचाता। गौरतलब है कि भारत में बाड़मेर सहित पूरे राजस्थान और यूएई में ऊंटनी का दूध काफी पहले से गाय और बकरी के दूध के विकल्प के तौर पर इस्तेमाल होता है।

स्वाद में थोड़ा नमकीन व हल्के तीखे इस दूध से भले ही आप पहले नाक-भौं सिकोड़ें लेकिन जब आपको इसके गुणों के बारे में पता चलेगा तब आपको इसका तीखापन भी स्वादिष्ट लगने लगेगा। 'राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केंद्र, बीकानेर' के वैज्ञानिकों ने अपने अनसुंधान में पाया कि ऊंटनी के दूध में प्रोटीन तथा कैल्शियम जैसे लाभकारी तत्व प्रचुर मात्रा में होते हैं। वहीं स्वास्थ्य के लिए हानिकारक वसा की मात्रा मात्र 2 से 2.50 प्रतिशत ही है। इस दूध को हृदय रोग, तपेदिक, मधुमेह जैसी बीमारियों के लिए लाभदायक पाया गया। इस दूध में अनेक औषधीय गुण पाए गए हैं जिस कारण वैज्ञानिकों ने इस दूध से एक सौदर्य क्रीम का निर्माण भी किया है।

अब बैटरी नहीं प्लास्टिक से मिलेगी बिजली

बैटरी को भूल जाओ। अब पतले प्लास्टिक कार्ड में बिजली स्टोर होगी। अगले दस सालों में क्रेडिट कार्ड की तरह पतले मोबाइल और आईपॉड बाजार में होंगे। आप कंप्यूटर स्क्रीन को भी पेपर की तरह मोड़कर रख सकेंगे। ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने छोटे छिद्रों वाली पतली प्लास्टिक बनाई है। यह करिश्माई प्लास्टिक आम बैटरी की तरह बिजली का भंडार करेगी। मोबाइल से लेकर कार तक सेकंडों में चार्ज हो जाएगी।

अब वॉशिंग मशीन में नहाएगा डॉगी:

क्या आप दिन-रात अपने पालतू कुत्ते या बिल्ली को साफ-सुथरा रखने की टेंशन में घुले जा रहे हैं? अगर हां, तो फौरन जापनी वैज्ञानिकों की 'पेट' ऑटोमेटिक वाशिंग मशीन घर ले आएं। इसमें न सिर्फ आप अपने प्यारे डॉगी को नहला सकेंगे, बल्कि उसे खुश भी पाएंगे। पेट वाशिंग मशीन 33 मिनट के अंदर कुत्ते-बिल्ली को नहलाने का काम निपटा लेती है। इस दौरान आपको शैंपू लगाने, पानी डालने और डॉगी का शरीर पोंछने के लिए हाथ लगाने की जहमत भी नहीं उठानी पड़ेगी।

जापान में यह तकनीक तेजी से लोकप्रिय हो रही है। स्वचालित (आटोमेटिक) 'पेट' वाशिंग मशीन में कुत्ते-बिल्ली को नहलाने के लिए शुद्ध ओजोन पानी का इस्तेमाल होता है। इसमें डॉगी को सुखाने की प्रक्रिया भी बेहद सुरक्षित है। शोधकर्ताओं ने बताया कि आर्थिक मंदी के दौर में यह मशीन पशुप्रेमियों के लिए किसी वरदान से कम नहीं है।

लोग स्मार्ट क्यों होते हैं:

आमतौर पर कुछ लोग दूसरों की तुलना में ज्यादा स्मार्ट क्यों होते हैं? यह सवाल अक्सर लोगों के जेहन में आता है। अब इस सवाल का जवाब मिल गया है। वैज्ञानिकों के मुताबिक ऐसा इसलिए होता है क्योंकि स्मार्ट लोगों के मस्तिष्क में तंत्रिक जालक्रम (न्यूरल नेटवर्क) ज्यादा होता है। 'न्यूरोसाइंटिस्ट' जर्नल में यह शोध प्रकाशित हुआ है।

नीदरलैंड की 'युट्रेक्ट यूनिवर्सिटी मेडिकल सेंटर' में तंत्रिका विज्ञानी (न्यूरोसाइंटिस्ट) मार्टिन वान डेन हीवेल ने इस बात का पता लगाया है। उन्होंने बताया कि आसान शब्दों में कहें तो इसका मतलब यह है कि अधिक स्मार्टर मस्तिष्क विभिन्न हिस्से से संदेश भेजने में सिर्फ कुछ ही मिनट लेते हैं। इसका बुद्धि स्तर भी कई लोगों की तुलना में काफी अच्छा होता है। इस मामले में एक और प्रमुख कारक न्यूरॉन फाइबर्स को रोकने वाला मोटा आवरण है जो कि वैद्युत संकेतन को प्रभावित करता है। लॉस एंजिल्स की 'यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया' के पॉल थांपसन ने भी बुद्धि लब्धि और आवरण के खोल में एक सह-संबंध पाया है।

❑

विविध स्तंभ

आयोग के नए शब्द संग्रह

जैव प्रौद्योगिकी: मूलभूत शब्दावली

विज्ञान गारिमा सिंधु के संपादक श्री अशोक सेवलटकर के संपादकत्व में प्रमाणित इस शब्द संग्रह में जैव प्रौद्योगिकी के आरंभिक पाठ्यक्रमों के लिए अंग्रेजी के लगभग 1800 तकनीकी शब्दों के हिंदी पर्याय प्रस्तुत किए गए हैं। इनके निर्माण-अनुमोदन की प्रक्रिया में प्रतिष्ठित जैव प्रौद्योगिकीविदों ने आयोग को सहयोग दिया है। आशा है, इस शब्दावली का स्वागत होगा। साथ ही हमें इस पर सुधी पाठकों की सम्मति की भी अपेक्षा रहेगी

कृषि विज्ञान: मूलभूत शब्दावली

शब्दावली आयोग ने अपनी वृहत् पारिभाषिक शब्द संग्रह योजना के अंतर्गत कृषि विज्ञान की शब्दावली का प्रकाशन सन् 1978 में किया था, तबसे कृषि-विज्ञान की अनेक विषय-शाखाओं, उपशाखाओं के उद्‌भव के कारण इस विषय की शब्दावली के परिमाण में आशातीत वृद्‌धि हुई है जिसका सर्वसमावेशी शब्दसंग्रह प्रस्तुत करना अभी समयापेक्षी है। अत: आयोग ने इस विषय की मूलभूत शब्दावली सन् 2000 में प्रकाशित की जिसका यह संशोधित परिवर्धित संस्करण है। इस शब्दसंग्रह के पर्यायों के चयन तथा उन्हें अतिम रूप देने में हमें गण्यमान्य कृषिविदों का सहयोग प्राप्त हुआ है। यह शब्दावली विज्ञान गारिमा सिंधु के संपादक श्री अशोक सेलवेटकर द्‌वारा संपादित की गई है।

आयुर्विज्ञान शब्द-संग्रह

शब्दावली आयोग ने सभी विषयों मे समेकित बृहत् पारिभाषित शब्द संग्रह के प्रकाशन की योजना के अधीन 1972 में आयुर्विज्ञान बृहत पारिभाषिक शब्द संग्रह प्रकाशित किया था जिसमें भेषजी तथा आयुर्विज्ञान के शब्द भी शामिल थे। यह शब्द संग्रह कुछ वर्षों से समाप्त हो चला था। आयुर्विज्ञान के छात्रों, शिक्षकों तथा अनुवादकों द्‌वारा इस शब्द संग्रह की बढती हुई मांग को देखकर अब आयोग ने नए कलेवर में आयुर्विज्ञान शब्द संग्रह प्रकाशित करने जा रहा है। यह शब्द संग्रह आयुर्विज्ञान के छात्रों, शिक्षकों, अनुसंधानकर्ताओं तथा अनुवादकों के लिए उपयोगी सिद्‌ध होगा। इस शब्द संग्रह में लगभग 14000 प्रविष्टियां हैं। अनेक नूतन प्रविष्टियों का भी इसमें समावेश करके इसे उपादेय बनाया गया है। इस शब्द संग्रह का संपादन आयोग के आयुर्विज्ञान एकक के प्रभारी डॉ. भीमसेन बेहेरा ने किया है। विद्‌वानों के बहुमूल्य सुझावों एवं परामर्श की अपेक्षा रहेगी।

लेखक परिचय

1. डॉ. दिनेश मणि
35/3 जवाहरलाल नेहरू रोड
जॉर्ज टाउन, इलाहाबाद

2. श्री सतीशचंद्र सक्सेना
बी.बी./35 एफ जनकपुरी
नई दिल्ली- 110 058

3. डॉ. इंदुभूषण पांडेय
वरिष्ठ वैज्ञानिक 'सस्य'
सस्य विज्ञान विभाग
तिरहुत कृषि महाविद्यालय
ढोली, मुजफ्फरपुर, बिहार

4. डॉ. बिजय कुमार उपाध्याय
कृष्ण इन्क्लेव, राजेंद्र नगर
डॉ. जमगोड़िया
बोकारो, झारखंड 827 013

5. डॉ. नवीन कुमार बौहरा
प्लॉट 389, गली 10,
मिल्कमैन कॉलोनी
पाल रोड, जोधपुर

6. डॉ. दीनानाथ शुक्ला
वरिष्ठ वैज्ञानिक, सस्य
सस्य विज्ञान विभाग
तिरहुत कृषि महाविद्यालय
ढोली, मुज्जफरपुर, बिहार

7. डॉ. आर.एस. सेंगर
जैव प्रौद्योगिकी महाविद्यालय
सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि
एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय,
मेरठ, उ.प्र.

8. श्री जगनारायण
ईशान स्टूडियो
श्री विश्वनाथ मंदिर
दुकान सं. 20
काशी हिंदू विश्वविद्यालय
वाराणासी 221 005

9. डॉ. दिलीप कुमार मौर्य
आयुर्वेद संकाय
चिकित्सा विज्ञान संस्थान
काय चिकित्सा विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय
वाराणासी-221 005

10. सुश्री मधु ज्योत्सना
डी 53/100 छोटी गैबी
लक्सा रोड, वाराणसी 221 010

11. डॉ. जे.एल. अग्रवाल
3, ज्ञान लोक
मयूर विहार,
शास्त्री नगर, मेरठ (उ.प्र.)

12. श्री संजय चौधरी
जे ऐंड के, 16 बी दिलशाद गार्डन
दिल्ली 110 095

13. डॉ दीपक कोहली
5/104 विपुल खंड
गोमतीनगर
लखनऊ 226 010

14. डॉ. भीमसेन बेहेरा
सहायक वैज्ञानिक अधिकारी (आयुर्विज्ञान)
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड 7, रामकृष्णपुरम्
नई दिल्ली- 110 066

आयोग के प्रकाशनों की सूची

शब्दसंग्रह, शब्दावलियाँ

शीर्षक		मूल्य
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी)		
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : विज्ञान खंड 1, 2 (संशोधित संस्करण)		174.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मानविकी और सामाजिक विज्ञान, खंड 1, 2		292.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मानविकी और सामाजिक विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी)		350.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : आयुर्विज्ञान, कृषि एवं इंजीनियरी (हिंदी-अंग्रेजी)		48.50
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : इंजीनियरी (सिविल, विद्युत, यांत्रिक)		340.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : पशु चिकित्सा विज्ञान		82.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : प्राणि विज्ञान		311.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मुद्रण इंजीनियरी		48.00
विषयवार शब्दालियाँ (अंग्रेजी-हिंदी)		
भौतिकी	अर्धचालक शब्दावली	140.00
गृह विज्ञान	गृह विज्ञान शब्द-संग्रह	60.00
	रेशम शब्द-संग्रह	50.00
वानिकी	वानिकी शब्द-संग्रह	447.00
जीव विज्ञान	कोशिका जैविकी शब्द-संग्रह	62.00
	कोशिका तथा अणु जैविकी शब्द-संग्रह	348.00
प्रशासन	प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)	20.00
	प्रशासनिक शब्दावली (हिंदी-अंग्रेजी)	20.00
रसायन	रसायन शब्द-संग्रह	592.00
	इस्पात एवं अलोह धातुकर्म शब्दावली	55.00
वाणिज्य	पूंजी बाजार एवं संबद्ध शब्दावली	79.00
	वाणिज्य शब्दावली	259.00

कंप्यूटर विज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी	कंप्यूटर विज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी शब्द संग्रह	231.00
इंजीनियरी	इलेक्ट्रॉनिक शब्दावली	349.00
भूगोल	जलवायु विज्ञान शब्दावली	131.00
	प्राकृतिक विपदा शब्दावली	17.00
भू-विज्ञान	अनुप्रयुक्त भूविज्ञान शब्दावली	115.00
	आर्थिक भूविज्ञान शब्दावली	75.00
	सामान्य भूविज्ञान शब्दावली	101.00
	भूविज्ञान शब्द-संग्रह	88.00
	भू-भौतिकी शब्दावली	67.00
	खनिज विज्ञान शब्दावली	130.00
	खनन एवं भूविज्ञान शब्द-संग्रह	32.00
	जीवाश्म विज्ञान शब्दावली	129.00
	शैल विज्ञान शब्दावली	82.00
	संरचनात्मक भूविज्ञान शब्दावली	73.00
	संरचनात्मक भूविज्ञान एवं विवर्तनिकी शब्द-संग्रह	15.00
पत्रकारिता	पत्रकारिता एवं मुद्रण शब्दावली	15.00
	प्रसारण तकनीकी शब्दावली	310.00
गणित	गणित शब्द-संग्रह	143.00
आयुर्विज्ञान	आयुर्विज्ञान के सामान्य शब्द एवं वाक्यांश (अंग्रेजी-तमिल-हिंदी)	279.00
	औषधि-प्रतिकूल प्रतिक्रिया शब्दावली	273.00
	आयुर्विज्ञान शब्दसंग्रह	517.00
	रोगनिदान एवं विकृतिविज्ञान शब्दावली	
लोक प्रशासन	संसदीय कार्य शब्दावली	130.00
गुणता नियंत्रण	गुणता नियंत्रण शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी)	38.00

विषयवार पारिभाषिक शब्दकोश (अंग्रेजी-हिंदी)

नृविज्ञान	सांस्कृतिक नृविज्ञान परिभाषा कोश	24.00
पुरातत्व विज्ञान	पुरातत्व विज्ञान परिभाषा कोश	509.00
कला एवं संगीत	पाश्चात्य संगीत परिभाषा कोश	28.55
जैविकी (जीवविज्ञान)	कोशिका जैविकी परिभाषा कोश	121.00
वनस्पति विज्ञान	वनस्पति विज्ञान परिभाषा कोश (संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण)	75.00
	पादप आनुवंशिकी परिभाष कोश	75.00
	पादपरोगविज्ञान परिभाषा कोश	75.00
	पुरावनस्पतिविज्ञान परिभाषा कोश	80.50
रसायन	रसायन (कार्बनिक) परिभाष कोश	25.00
	उच्चतर रसायन परिभाषा कोश	17.00
	धातुकर्म परिभाषा कोश	278.00
वाणिज्य	वाणिज्य परिभाषा कोश	24.70
अर्थशास्त्र	अर्थमिति परिभाषा कोश	17.65
इंजीनियरी	सिविल इंजीनियरी परिभाषा कोश	61.00
	विद्युत इंजीनियरी परिभाषा कोश	81.00
	यांत्रिक इंजीनियरी परिभाषा कोश-1	84.00
भूगोल	मानचित्र विज्ञान परिभाषा कोश	231.00
भू-विज्ञान	भू-विज्ञान परिभाषा कोश	63.00
	पेट्रोलियम प्रौद्योगिकी परिभाषा कोश	173.00
	शैल विज्ञान परिभाषा कोश	153.00
	संरचनात्मक भूविज्ञान परिभाषा कोश	13.50
कृषि	कृषि कीट विज्ञान परिभाषा कोश	75.00
	सूत्रकृमि विज्ञान परिभाषा कोश	125.00
	मृदा विज्ञान परिभाषा कोश	77.00
विधि	अंतरराष्ट्रीय विधि परिभाषा कोश	344.00
पत्रकारिता	पत्रकारिता परिभाषा कोश	87.50
प्रबंध विज्ञान	प्रबंध विज्ञान परिभाषा कोश	170.00
गणित	गणित परिभाषा कोश	203.00
दर्शन शास्त्र	दर्शन शास्त्र परिभाषा कोश	198.00
	भारतीय दर्शन शास्त्र परिभाषा कोश खंड 3	136.00
भौतिकी	तरल यांत्रिकी परिभाषा कोश	10.00
	भौतिकी परिभाषा कोश	700.00
प्राणि विज्ञान	प्राणि विज्ञान परिभाषा कोश	216.00
आयुर्विज्ञान	आयुर्वेद परिभाषा कोश	250.00

क्षेत्रीय भाषा शब्दावली

(क) अंग्रेजी-ओडिया

आयुर्विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	450.00
राजनीति विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	186.00
इतिहास शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	404.00
गणित शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	189.00
प्राणिविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	205.00
वाणिज्य शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	162.00
मनोविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	108.00

अर्थशास्त्र शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	183.00
रसायन शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	137.00
वनस्पतिविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	208.00
शिक्षाविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	137.00
प्रशासनिक शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	390.00
दर्शनशास्त्र शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	61.00
भौतिकविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-ओडिया)	203.00

(ख) अंग्रेजी-बोडो

भूगोल शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	515.00
अर्थशास्त्र शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	185.00
भूविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	306.00
शिक्षा शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	97.00
समाजशास्त्र शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	118.00
राजनीतिविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	211.00
पुरातत्वविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	157.00
गणित शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-बोडो)	35.00
प्रशासन शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी-बोडो)	720.00
भौतिकी शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी-बोडो)	652.00
प्राणिविज्ञान शब्द-संग्रह (अंग्रेजी-हिंदी-बोडो)	417.00

संदर्भ ग्रंथ

ऐतिहासिक नगर	195.00	भारत में गैस उत्पादन एवं प्रबंधन	540.00
प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक नगर	109.00	भारत में ऊसर भूमि एवं फसलोत्पादन	559.00
समुद्री यात्राएं	79.00	2 दूरीक एवं 2 मानकित समष्टियों में संपात	
विश्व दर्शन	53.00	एवं स्थिर बिंदु समीकरणों के साधन	68.00
अपशिष्ट प्रबंधन	17.00	भारत में प्याज एवं लहसुन की खेती	82.00
कोयला: एक परिचय	115.00	ठोस पदार्थ यांत्रिकी	995.00
वाहितमल एवं आपंक : उपयोग एवं प्रबंधन	40.00	वैज्ञानिक शब्दावली: अनुवाद एवं मौलिक लेखन	34.00
पर्यावरण प्रदूषण : नियंत्रण एवं प्रबंधन	23.00		
मृदा-उर्वरता	410.00	पादपों में कीट प्रतिरोध और	
ऊर्जा-संसाधन और संरक्षण	105.00	समेकित कीट प्रबंधन	367.00
पशुओं के कवकीय रोग:		स्वतंत्रता-पूर्व हिंदी में विज्ञान लेखन	167.00
उनका उपचार एवं नियंत्रण	93.00	भेड़ बकरियों के रोग एवं उनका नियंत्रण	343.00
पराज्यमितीय फलन	90.00	भविष्य की आशा: हिंद महासागर	154.00
सामाजिक एंव प्रक्षेत्र वानिकी	54.00	भारतीय कृषि का विकास	155.00
विश्व के प्रमुख धर्म	118.00	विकास मनोविज्ञान भाग-1	40.00
पृथ्वी : उद्भव और विकास	470.00	विकास मनोविज्ञान भाग-2	30.00
पृथ्वी से पुरातत्व	40.00	कृषिजन्य दुर्घटनाएं	25.00
इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी	90.00	इलेक्ट्रॉनिक मापन	31.00
द्रवचालित मशीन	66.50	वनस्पतिविज्ञान पाठमाला	16.00
मैग्नेसाइट : एक भूवैज्ञानिक अध्ययन	214.00	इस्पात परिचय	146.00
मृदा एवं पादप-पोषण	367.00	जैव-प्रौद्योगिकी: अनुसंधान एवं विकास	134.00
नलकूप एवं भौमजल अभियांत्रिकी	398.00	विश्व के प्रमुख दार्शनिक	433.00

विश्व के प्रमख धर्मों में धर्मसमभाव की अवधारणा : एक तुलनात्मक अध्ययन	490.00	प्राकृतिक खेती	167.00
समकाली भारतीय दर्शन के कुछ मानववादी चिंतक : तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन	153.00	हिंदी विज्ञान पत्रिकारिता: कल, आज और कल	
		मानसून पवन: भारतीय जलवायु का आधार	112.36
		हिंदी में स्वतंत्रता-परवर्ती विज्ञान लेखन	280.00

ग्राहक फार्म

सेवा में
अध्यक्ष,
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
पश्चिम खंड-7 रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली-110066
महोदय,

कृपया मुझे ''विज्ञान गारिमा सिंधु'' (त्रैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए ----------से ग्राहक बना लीजिए। मैं पत्रिका का वार्षिक सदस्यता शुल्क ----------रुपये, अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली के पक्ष में, नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट---------- सं. दिनांक ----------द्वारा भेज रहा/रही हूँ। कृपया पावती भिजवाएं।

नाम ----------

पूरा पता ----------

भवदीय

हस्ताक्षर

सदस्यता शुल्क	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा	
प्रति अंक (व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए)	रु. 14.00	पौंड 1.64	डॉलर 4.84
वार्षिक (व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए)	रु. 50.00	पौंड 5.83	डॉलर 18.00
प्रति अंक (विद्यार्थियों के लिए)	रु. 8.00	पौंड 0.93	डॉलर 10.80
वार्षिक (विद्यार्थियों के लिए)	रु. 30.00	पौंड 3.50	डॉलर 2.88

डिमांड ड्राफ्ट ''अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग'' के पक्ष में नई दिल्ली स्थित किसी भी अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम व पूरा पता भी लिखे। ड्राफ्ट 'एकाउंट पेई' होना चाहिए। यदि ग्राहक विद्यार्थी है तो कृपया निम्न प्रमाण-पत्र भी संलग्न करें :

विद्यार्थी-ग्राहक प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कुमारी/श्रीमती/श्री----------इस विद्यालय/महाविद्यालय/विश्वविद्यालय के.....विभाग के छात्र/की छात्रा है।

हस्ताक्षर
(प्राचार्य/विभागाध्यक्ष)
(मोहर)

बिक्री संबंधी नियम

1. आयोग के प्रकाशन, आयोग के बिक्री पटल तथा भारत सरकार के प्रकाशन विभाग के विभिन्न बिक्री पटलों पर उपलब्ध रहते हैं। आयोग पटल:- वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, पश्चिमी खंड-7, सेक्टर-1, रामकृष्णपुरम, दिल्ली-110066

2. सभी प्रकाशनों की खरीद पर 25 प्रतिशत की छूट दी जाती है। कुछ पुराने प्रकाशनों पर 75 प्रतिशत तक भी छूट दी जाती है।

3. सभी तरह के आदेशों की प्राप्ति पर आयोग द्वारा इनवाइस जारी किया जाता है। अपेक्षित धन राशि का बैंक ड्राफ्ट या मनीऑर्डर अध्यक्ष, वैज्ञानिकी तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली (Chairman, C.S.T.T., New Delhi) के नाम देय होना चाहिए। चेक स्वीकार्य नहीं होगा। अपेक्षित धनराशि प्राप्त होने के पश्चात ही पुस्तकें भेजी जाती हैं।

4. चार किलोग्राम वजन तक की सभी पुस्तकें डाक/अपंजीकृत पार्सल से भेजी जाती हैं। पुस्तकें भेजने पर पैकिंग तथा फॉर्वडिंग चार्ज नहीं लिया जाता है।

5. चार किलोग्राम से अधिक की सभी पुस्तकें सड़क परिवहन (ट्रांसपोर्ट) से भेजी जाती हैं तथा इन पर आने वाले सभी परिवहन-व्ययों का भुगतान मांगकर्ता द्वारा ही किया जाएगा।

6. पुस्तकें सड़क परिवहन से भेजने के बाद आयोग द्वारा मूल बिल्टी तत्काल पंजीकृत डाक से मांगकर्ता को भेज दी जाती है। यदि निर्धारित अवधि में पुस्तकों को ट्रांसपोर्ट कार्यालय से प्राप्त न किया गया तो उस स्थिति में लगने वाले सभी तरह के अतिरिक्त प्रभारों का भुगतान मांगकर्ता को ही करना होगा।

7. सड़क परिवहन से भेजी जाने वाली पुस्तकों पर न्यूनतम वजन का प्रभार अवश्य लगता है जो प्रत्येक दूरी के लिए अलग-अलग होता है। यदि संबंधित संस्था चाहें तो आयोग में सीधे ही भुगतान करके स्वयं पुस्तकें प्राप्त कर सकती है।

8. दिल्ली तथा उससे नजदीक के क्षेत्रों के आदेशों की पूर्ति डाक द्वारा संभव नहीं होगी। संबंधित संस्था को आयोग के बिक्री एकक में आवश्यक भुगतान करके पुस्तकें प्राप्त करनी होंगी।

9. पुस्तकों की पैकिंग करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि मांगकर्ता को सभी पुस्तकें अच्छी स्थिति में प्राप्त हों। पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल/रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाती हैं। यदि परिवहन में पुस्तकों को किसी भी तरह का नुकसान पहुंचता है तो उसका दायित्व आयोग पर नहीं होगा।

10. सामान्यत: बिल कटने के बाद आदेश में बदलाव या पुस्तकों की वापसी नहीं होगी। यदि क्रय राशि का समायोजन आवश्यक होगा तो राशि वापस नहीं की जाएगी। इस स्थिति में पुस्तकें ही दी जाएंगी।

प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के बिक्री केंद्रों की सूची

क्र. सं.	पता
1.	**प्रकाशन नियंत्रक** प्रकाशन विभाग, पुराना सचिवालय के पीछे सिविल लाइन्स, दिल्ली- 110 054
2.	**किताब महल** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार बाबा खड़ग सिंह मार्ग, स्टेट एंपोरियम बिल्डिंग, यूनिट नं. 21, नई दिल्ली- 110 011
3.	**पुस्तक डिपो** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के. एस. राय मार्ग, कोलकाता-700 001
4.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स न्यू मेरीन लाइन्स, मुंबई-400 020
5.	**बिक्री काउंटर** प्रकाशन विभाग, उद्योग भवन गेट नं. 3, नई दिल्ली-110 001
6.	**बिक्री काउंटर** **प्रकाशन विभाग,** **भारत सरकार, (लॉयर्स चैंबर)** **दिल्ली उच्च न्यायालय** **नई दिल्ली-110 003**
7.	**बिक्री काउंटर** **प्रकाशन विभाग** **संघ लोक सेवा आयोग, शहाजहान रोड** **धौलपुर हाउस, नई दिल्ली- 110 001**

MGIPRRND—765 HRD/13—1000 Copies.

© भारत सरकार

प्रकाशन-नियंत्रक
जनवरी–मार्च-2012

पी. सी. एस. टी. टी. (1-3) 12
1,000

नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054 द्वारा प्रकाशित तथा
प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली-110064 द्वारा मुद्रित
2013